

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
९२

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
४

भगवती श्रीगायत्री



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष
९२

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अप्रैल २०१८ ई०

संख्या
४

पूर्ण संख्या १०९७

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु ॥
नाथ करहु बालक पर छोहू।सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना।तौ कि बराबरि करत अयाना ॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी।तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने।कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी।राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं।कालकूटमुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही।नीचु मीचु सम देख न मोही ॥

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल ।

जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ॥

[श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अप्रैल २०१८ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- परशुराम-लक्ष्मण-संवाद	३	१७- परमात्माके दर्शनमें बाधक कौन ?	
२- कल्याण	५	(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी०एच०डी०) ...	२६
३- भगवती श्रीगायत्री [आवरणचित्र-परिचय]	६	१८- 'मेरे साँचे! तेरी कृपा है' (डॉ० श्रीगोपालजी नारसन)	
४- मानव-जीवनका सर्वोत्तम कार्य		[प्रेषक—श्रीनन्दकिशोरजी मित्तल]	२८
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	१९- 'प्यारे! राम रसायन पी ले' [कविता]	
५- क्षमाने दुर्जनको सज्जन बनाया	८	(आचार्य श्रीभगवतजी दुबे)	२९
६- जिज्ञासा और उसकी प्रक्रिया (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	९	२०- वर्तमान शिक्षा-व्यवस्थामें मूल्यपरकताकी आवश्यकता	
७- भगवद्दर्शन		(डॉ० श्रीरविशेखरजी वर्मा, एम०ए०, पी०एच०डी०)	३०
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	१२	२१- दुर्जन-संगका फल [प्रेरक-प्रसंग]	३२
८- चेतनाका प्रकाश (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल)	१४	२२- भक्त जलारामजी [संत-चरित]	
९- श्रीहनुमान-स्तुति (श्रीगजेन्द्रसिंहजी 'गुरुदास')	१५	(शास्त्री श्रीमंगलजी उड्डवजी पुरोहित)	३३
१०- निष्कामभावनासे लाभ और सकामभावनासे हानि		२३- वल्लभसम्प्रदाय और उसके अष्ट कवि	
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६	(श्रीआनन्दकुमार शुक्ला, वरिष्ठ शोध अध्येता)	३६
११- 'तू दे ऐसा वरदान मुझे' [कविता]		२४- सबसे अपवित्र है क्रोध [प्रेरक-प्रसंग]	३९
(श्रीमहेशचन्द्रजी त्रिपाठी)	१७	२५- गौ—लोकमाता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	४०
१२- अन्तकालकी भावना (श्रीबरजोरसिंहजी)	१८	२६- ऋण लेकर भूलना नहीं चाहिये [प्रेरक-प्रसंग]	४२
१३- आनन्दमय जीवनके स्वर्णिम सूत्र		२७- साधनोपयोगी पत्र	४३
(से०नि०बिप्रेडियर श्रीकरणसिंहजी चौहान)	२०	२८- व्रतोत्सव-पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]	४५
१४- पुरुषोत्तममासका महत्त्व एवं कर्तव्य	२३	२९- कृपानुभूति	४६
१५- उलाहना भी प्रेमतत्त्व है (डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)	२४	३०- पढ़ो, समझो और करो	४७
१६- महल नहीं, धर्मशाला	२५	३१- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवती श्रीगायत्री	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- परशुराम-लक्ष्मण-संवाद	(")	मुख-पृष्ठ
३- भगवती श्रीगायत्री	(इकरंगा)	६
४- राजर्षि भरत	(")	१८
५- भक्त जलारामजी	(")	३३
६- जटायुका वैकुण्ठगमन	(")	५०

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges \$6 Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

निश्चय करो—मेरे मनमें सदा-सर्वदा मंगलमय भगवान् निवास करते हैं। उनके समस्त दिव्य गुण और भाव मेरे मनमें सदा तरंगित हो रहे हैं। अब मैं उनके सिवा मनमें किसी भी अन्य वस्तुको और किसी भी बुरे विचार और भावको नहीं आने दूँगा।

निश्चय करो—मैं सर्वत्र भगवान् और उनके मंगलमय भावोंको देखूँगा। सदा सद्बिचार करूँगा, मेरे मुखसे सदा भगवान्की महिमाको बतानेवाले, सबका हित करनेवाले, सुख पहुँचानेवाले सत्य, मधुर और पवित्र वचन ही निकलेंगे।

निश्चय करो—मैं कभी कोई ऐसा काम नहीं करूँगा, जो श्रीभगवान्की प्रसन्नताका कारण न हो। सदा उनकी सेवाके लिये ही उनके प्रीतिकर कर्म करूँगा। मेरी इच्छा सदा उन्हीं कर्मोंके करनेकी होगी, जिनसे भगवान् और उन्हींके अभिव्यक्त रूप जगत्के प्राणियोंको सुख होता हो।

निश्चय करो—मुझे कभी भी सद्बिचार तथा सत्कर्मको छोड़कर अन्य किसी भी विचार तथा कर्मके लिये अवकाश ही नहीं मिलेगा। मन तथा शरीर नित्य भगवान्की सेवामें ही लगे रहेंगे। एक क्षणका भी सेवा-वियोग मुझको सहन नहीं होगा।

निश्चय करो—मेरा कभी कोई अमंगल नहीं हो सकता, मेरा कभी कोई बुरा नहीं कर सकता; क्योंकि सभीमें सभी समय मेरे भगवान् ही निवास करते हैं, और मेरे लिये जो कुछ भी, जिस किसीके द्वारा भी होता है, सब भगवान्के मंगलमय विधानसे मेरे मंगलके लिये होता है।

निश्चय करो—संसारमें मुझको कोई भी मनुष्य या घटना कभी भी निराश या उदास नहीं कर सकते; क्योंकि मेरे परम सुहृद् भगवान् नित्य स्वाभाविक ही

मेरा मंगल करते रहते हैं। और जब सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र विराजमान मेरे प्रभु मेरे मंगल-विधानमें संलग्न हैं, तब सफलतामें सन्देहका स्थान ही कहाँ है, जिससे निराशा और उदासीकी सम्भावना हो।

याद रखो—जब भगवान्के मंगलमय राज्यमें अमंगलको स्थान ही नहीं है, तब अमंगलकी कल्पना करके मैं क्यों व्यर्थ ही अमंगलको बुलाऊँ?

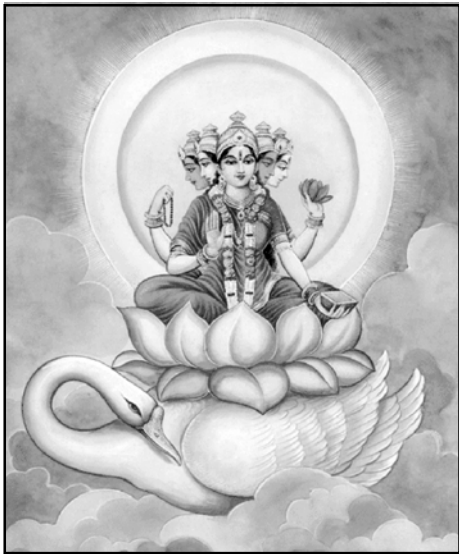
निश्चय करो—जब सभीमें मेरे भगवान् भरे हैं, तब सभी मंगलसे ही ओतप्रोत हैं। फिर मैं किसीमें अमंगलके दर्शन करके इस सत्यका हनन क्यों करूँ?

निश्चय करो—जब सर्वत्र और सदा मंगल-ही-मंगल और आनन्द-ही-आनन्द है, तब मैं सदा आनन्दमें ही निमग्न रहूँगा। जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, सुख-दुःख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा—किसी भी बाहरी अवस्थाका मेरी इस नित्य आनन्दमयी स्थितिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकेगा।

निश्चय करो—यहाँ जो तुम्हें दोष, दुःख, अमंगल तथा अशुभ दीखता है, वह इसीलिये है कि तुम सदा सर्वत्र नित्य मंगलमय और आनन्दमय भगवान्को नहीं देख पा रहे हो। यहाँ जो कुछ ऊपरसे दीखता है—वह उन मंगलमय भगवान्के ही विभिन्न छद्मवेष हैं। उन्हींकी लीलाके विविध दृश्य हैं। इनकी आड़में नित्यानन्द-घनस्वरूप भगवान् सदा विराजमान हैं।

याद रखो—तुम अशुभकी कल्पना करते हो, इसीसे तुम्हें दुःख होता है। किसी भी अशुभसे अशुभ कहे और माने जानेवाले पदार्थ और भावमें भी, गहराईसे देखोगे तो, तुम्हें परम शुभ और परम सुखरूप भगवान् छिपे दिखायी देंगे। जहाँ जाओ, जहाँ देखो, उन्हें ही देखनेका प्रयत्न करो। अपनी तीक्ष्ण दृष्टिसे उन्हींका अनुसन्धान करो। उन्हें पहचान लो और निहाल हो जाओ। 'शिव'

भगवती श्रीगायत्री



भगवती गायत्री आद्याशक्ति प्रकृतिके पाँच स्वरूपोंमें एक मानी गयी हैं। इनका विग्रह तपाये हुए स्वर्णके समान है। यही वेदमाता कहलाती हैं। वास्तवमें भगवती गायत्री नित्यसिद्ध परमेश्वरी हैं। किसी समय ये सविता (सूर्य)–की पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं, इसलिये इनका नाम सावित्री पड़ गया। कहते हैं कि सविताके मुखसे इनका प्रादुर्भाव हुआ था। भगवान् सूर्यने इन्हें ब्रह्माजीको समर्पित कर दिया। तभीसे इनकी ब्रह्माणी संज्ञा हुई। कहीं-कहीं सावित्री और गायत्रीके पृथक्-पृथक् स्वरूपोंका भी वर्णन मिलता है। इन्होंने ही गयों (प्राणों)–का त्राण किया था, इसलिये भी इनका गायत्री नाम प्रसिद्ध हुआ। उपनिषदोंमें भी गायत्री और सावित्रीकी अभिन्नताका वर्णन है—**गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयात्।**

गायत्री ज्ञान-विज्ञानकी मूर्ति हैं। ये द्विजातिमात्रकी आराध्या देवी हैं। इन्हें परब्रह्मस्वरूपिणी कहा गया है। वेदों, उपनिषदों और पुराणादिमें इनकी विस्तृत महिमाका वर्णन मिलता है। गायत्रीकी उपासना तीनों कालोंमें की जाती है, प्रातः, मध्याह्न और सायं। तीनों कालोंके लिये इनका पृथक्-पृथक् ध्यान है। प्रातःकाल ये सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान रहती हैं; उस समय इनके शरीरका रंग

लाल रहता है। ये अपने दो हाथोंमें क्रमशः अक्षसूत्र और कमण्डलु धारण करती हैं। इनका वाहन हंस है तथा इनकी कुमारी अवस्था है। इनका यही स्वरूप ब्रह्मशक्ति गायत्रीके नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन ऋग्वेदमें प्राप्त होता है। मध्याह्नकालमें इनका युवास्वरूप है। इनकी चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। इनके चारों हाथोंमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते हैं। इनका वाहन गरुड है। गायत्रीका यह स्वरूप वैष्णवी शक्तिका परिचायक है। इस स्वरूपको सावित्री भी कहते हैं। इसका वर्णन यजुर्वेदमें मिलता है। सायंकालमें गायत्रीकी अवस्था वृद्धा मानी गयी है। इनका वाहन वृषभ है तथा शरीरका वर्ण शुक्ल है। ये अपने चारों हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, डमरू, पाश और पात्र धारण करती हैं। ये रुद्रशक्तिकी परिचायिका हैं। इनका वर्णन सामवेदमें प्राप्त होता है।

इस प्रकार गायत्री, सावित्री और सरस्वती एक ही ब्रह्मशक्तिके नाम हैं। इस संसारमें सत्-असत् जो कुछ है, वह सब ब्रह्मस्वरूपा गायत्री ही हैं। भगवान् व्यास कहते हैं—‘जिस प्रकार पुष्पोंका सार मधु, दूधका सार घृत और रसोंका सार पय है, उसी प्रकार गायत्रीमन्त्र समस्त वेदोंका सार है। गायत्री वेदोंकी जननी और पाप-विनाशिनी हैं, गायत्री-मन्त्रसे बढ़कर अन्य कोई पवित्र मन्त्र पृथ्वीपर नहीं है।’

गायत्री-मन्त्र ऋक्, यजुः, साम, काण्व, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तिरीय आदि सभी वैदिक संहिताओंमें प्राप्त होता है, किंतु सर्वत्र एक ही मिलता है। इसमें चौबीस अक्षर हैं। मन्त्रका मूल स्वरूप इस प्रकार है—‘**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।**’ (वाजसनेयी सं० ३। ३५) अर्थात् ‘सृष्टिकर्ता प्रकाशमान परमात्मा प्रसिद्ध वरणीय तेजका (हम) ध्यान करते हैं, वे परमात्मा हमारी बुद्धिको (सत्की ओर) प्रेरित करें।’

याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंने जिस गायत्री भाष्यकी रचना की है, वह इन चौबीस अक्षरोंकी विस्तृत व्याख्या है। इस महामन्त्रके द्रष्टा महर्षि विश्वामित्र हैं।

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥

‘इसमें क्षमा करनेकी क्या बात है। आपकी कृपासे आज मुझे एक सौ आठ बार गोदावरीका पुण्य स्नान प्राप्त हुआ।’ एकनाथजीने उस पठानको आश्वासन दिया।

खोलो फाटक मत करो देर॥



भगवद्दर्शन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌के दर्शन इस युगमें भी अवश्य हो सकते हैं, बल्कि अन्यान्य युगोंकी अपेक्षा थोड़े समयमें और थोड़े प्रयाससे ही हो सकते हैं। भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजी और नरसी मेहता आदि प्रेमियोंको भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं, इस बातको मैं सर्वथा सत्य मानता हूँ। यदि भक्त चाहे तो वह दो मित्रोंकी भाँति एक स्थानपर मिलकर भगवान्‌से परस्पर वार्तालाप भी कर सकता है। अवश्य ही भक्तमें वैसी योग्यता होनी चाहिये। भक्तोंके ऐसे अनेक पुनीत चरित इस बातके प्रमाण हैं। भगवान्‌के शीघ्र दर्शनका सबसे उत्तम उपाय दर्शनकी तीव्र और उत्कट अभिलाषा ही है। जिस प्रकार जलमें डूबता हुआ मनुष्य ऊपर आनेके लिये परम व्याकुल होता है, उसी प्रकारकी परम व्याकुलता यदि भगवद्दर्शनके लिये हो तो भगवान्‌का दर्शन होना कोई बड़ी बात नहीं। व्याकुलता बनावटी न होकर असली होनी चाहिये। किसीका एकलौता पुत्र मर रहा हो या किसीकी सैकड़ों वर्षोंसे बनी हुई इज्जत जाती हो, उस समय मनमें जैसी स्वाभाविक और निष्कपट व्याकुलता होती है, वैसी व्याकुलता परमात्माके दर्शनके लिये जिस परम भाग्यवान्‌ भक्तके अन्तरमें उत्पन्न होती है, उसको दर्शन दिये बिना भगवान्‌ कभी नहीं रह सकते। ऐसी व्याकुलता तभी होती है, जबकि वह भक्त संसारके समस्त पदार्थोंसे परमात्माको बड़ा समझता है, इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंको अत्यन्त तुच्छ और नगण्य समझकर केवल एक परम प्यारे श्यामसुन्दरके लिये अपने जीवन, धन, ऐश्वर्य, मान, लोक-लज्जा, लोकधर्म और वेदधर्म सबको समर्पण कर चुकता है। देवर्षि नारदजीने भक्तिका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा है—

तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।

(नारदभक्तिसूत्र १९)

‘अपने समस्त कर्म भगवान्‌को अर्पण कर देना और उन्हें भूलते ही परम व्याकुल होना भक्ति है।’ जबतक जगत्‌के भोगोंकी इच्छा है, जबतक जगत्‌के

अनित्य पदार्थ सुन्दर, सुखरूप और तृप्तिकर मालूम होते हैं और जबतक उनमें रस आता है, तबतक हमारे हृदयका पूरा स्थान भगवान्‌के लिये खाली नहीं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने कहा है—

जो मोहि राम लागते मीठे।

तौ नवरस-षटरस-रस अनरस हैं जाते सब सीठे॥

(विनय-पत्रिका १६९।१)

यदि मुझे भगवान्‌ राम प्यारे लगते तो (साहित्यके) शृंगारादि नवों रस और (भोजनके) अम्ल आदि छहों रस नीरस होकर सीठे (सारहीन-फीके) हो जाते। हम अपने अन्तरमें भगवान्‌को जितना-सा स्थान देते हैं, उतना-सा उसका फल भी हमें प्राप्त होता है, परंतु जबतक हम अपने हृदयका पूरा आसन उस हृदयेश्वरके लिये सजाकर तैयार नहीं करते, जबतक हमारे अन्तःकरणमें अनवरत और निरन्तर अटूट तैलधाराकी भाँति भगवद्भावका स्रोत नहीं बहता, तबतक उसके लिये व्याकुलता नहीं हो सकती और जबतक हम व्याकुल नहीं होते, तबतक भगवान्‌ भी हमारे लिये व्याकुल नहीं होते, क्योंकि भगवान्‌की यह एक शर्त है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४।११)

‘जो मुझको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ।’ जब भक्त प्रेममें तन्मय होकर मतवालेकी तरह घर-बार, स्त्री-पुत्र, लोक-परलोक, हर्ष-शोक, मान-अपमान आदि सबका विसर्जनकर उस परमात्माके लिये परम व्याकुल होता है, एक क्षणभरके विछोहसे भी जो जलसे अलग की हुई मछलीके समान छटपटाने लगता है, भक्तिमती गोपियोंकी भाँति जिसके प्राण विरह-वेदनासे व्याकुल हो उठते हैं, उसको भगवान्‌के दर्शन अत्यन्त शीघ्र हो सकते हैं, परंतु हमलोगोंमें वैसी अनन्य व्याकुलता प्रायः नहीं है। इसीलिये दर्शनमें भी विलम्ब हो रहा है। हमलोग धन-संतान और मान-कीर्तिके लिये जितना जी-तोड़ परिश्रम और सच्चे मनसे

चेतनाका प्रकाश

(पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल)

चेतनाका प्रकाश जिस ओर जाता है, उसी ओर आलोक हो जाता है और जिस ओर उसका प्रकाश नहीं जाता, उस ओर अन्धकार रहता है। चेतनाके प्रकाशमें दो विशेषताएँ हैं—एक, वह पदार्थका ज्ञान कराता है और दूसरे, वह उसे प्रिय बनाता है। उससे जिस ओर हमारी चेतना जाती है अर्थात् जिन वस्तुओंकी ओर हम ध्यान देते हैं, वे न केवल हमें सभी प्रकारसे ज्ञात हो जाती हैं, वरं वे हमें प्रिय भी हो जाती हैं। जिन बातोंके बारेमें हम कुछ जानते नहीं, वे हमें प्रिय भी नहीं होतीं। मनुष्यको जो वस्तु प्यारी लगती है, वह उसकी वृद्धि करनेकी भी चेष्टा करता है। इस तरह चेतनासे प्रकाशित वस्तुओंकी वृद्धि होने लगती है। मनुष्यके सांसारिक धन-वैभवकी वृद्धि इसी प्रकार होती है। शरीरकी उन्नति भी शरीरके विषयमें सोचनेसे होती है।

जब मनुष्य बहिर्मुखी रहता है तो वह सांसारिक उन्नति करता है। उसके धन, यश और मान-प्रतिष्ठा बढ़ते हैं, पर उसका स्वत्व अन्धकारमें रह जाता है। अन्धकारमें रहनेके कारण न तो मनुष्यको अपने-आपका कुछ ज्ञान होता है और न उसे अपना-आप प्रिय ही लगता है। इतना ही नहीं, बहिर्मुखी व्यक्तिको यदि अकेला छोड़ दिया जाय तो वह अपने-आपसे इतना विकल हो जायगा कि उसे आत्महत्या करनेकी इच्छा होने लगेगी। यदि किसी कारणसे बहिर्मुखी व्यक्तियोंको कभी अकेले रह जाना पड़ता है तो वे जीवनसे निराश हो जाते हैं। उनके विचार उनके नियन्त्रणमें नहीं रहते। उनकी मानसिक ग्रन्थियाँ उन्हें भारी त्रास देने लगती हैं। जबतक उन्हें फिर किसी प्रकारका व्यवसाय नहीं मिल जाता, तबतक उन्हें जीवन भाररूप हो जाता है।

चेतनाका प्रकाश बाहर जानेसे मनुष्यके मनमें अनेकों प्रकारके संस्कार पड़ते हैं। ये सभी संस्कार मानसिक क्लेशके कारण बन जाते हैं। इनसे आत्माकी प्रियता कम हो जाती है और बाहरी पदार्थोंकी ओर आकर्षण बढ़ता जाता है। इस प्रकार मनुष्यकी चेतनाके पाँच सांसारिक

पदार्थोंकी इच्छाओंके रूपमें एक अचेतन मनकी सृष्टि होती है। जो व्यक्ति जितना ही बहिर्मुखी है, उसकी सांसारिक पदार्थोंकी इच्छाएँ उतनी ही प्रबल होती हैं। इन ग्रन्थियोंके कारण मनुष्यका आन्तरिक स्वत्व दुखी हो जाता है। वह फिर चेतनाके प्रकाशको अपने-आपके पास बुलानेका उपाय रचता है। रोगकी उत्पत्ति अपने-आपकी ओर चेतनाके प्रकाशके बुलानेका उपाय है।

मनुष्यका वैयक्तिक अचेतन मन उसकी मानसिक ग्रन्थियों और दमित इच्छाओंका बना हुआ है। दबी हुई इच्छाओंके चेतनापर प्रकाशित होनेसे रेचन हो जाता है और बहुत-सी मानसिक ग्रन्थियाँ इस प्रकार खुल जाती हैं, पर उससे मानसिक ग्रन्थियोंका बनना रुकता नहीं। नयी मानसिक ग्रन्थियाँ बनती ही जाती हैं। इस प्रकार अचेतन मनका नया भार तैयार होता जाता है। मनोविश्लेषण-चिकित्सासे मनुष्यकी व्याधिविशेषका उपचार हो जाता है, पर उससे मूल रोग नष्ट नहीं होता। वह नये-नये रूपोंमें प्रकाशित होता रहता है। जबतक अचेतन मनपर चेतनाका प्रकाश नहीं जाता, तबतक वह मानसिक प्रकाशको बाहरकी ओर जानेसे रोककर उसे भीतरकी ओर ले जाता है।

जब मनुष्य अन्तर्मुखी हो जाता है तो बाह्य पदार्थोंकी प्रियता चली जाती है। उसके कारण वे मनुष्यके मनपर अपने दृढ़ संस्कार नहीं छोड़ते। इस प्रकार नया कर्मविपाक बनना बन्द हो जाता है। सदा आध्यात्मिक चिन्तन करनेसे मनुष्यकी पुरानी मानसिक ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। अब उसे अपने सुखके लिये इधर-उधर दौड़ना नहीं पड़ता। उसे अपने विचारोंमें ही असीम आनन्द मिलने लगता है। अब अनेक प्रकारकी सांसारिक चिन्ताएँ किसी प्रकारकी मानसिक अशान्ति उत्पन्न नहीं करतीं। मनुष्य निजानन्दमें निमग्न रहता है। ऐसा व्यक्ति सदा साम्यावस्थामें रहता है।

चेतनाका प्रकाश धीरे-धीरे भीतरकी ओर मोड़ा जाता है। इसके लिये मनुष्य अपने-आपके विचारोंकी

श्रीहनुमान-स्तुति

आवश्यकता है। जब मनुष्यको बाह्य विषयोंसे विरक्ति हो जाती है अर्थात् जब वे उसे दुःखरूप प्रतीत होने लगते हैं, तभी वह सुखको अपने भीतर खोजनेकी चेष्टा करता है। मनके हताश होनेकी अवस्थामें मनुष्यके विचार स्थिर ही नहीं रहते, उसे सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे असन्तोष होता है। वह सभी प्रकारके प्रयत्नोंको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगता है। अतएव एकाएक मनको अन्तर्मुखी नहीं बनाया जा सकता, पर धीरे-धीरे अभ्यासके द्वारा उसे अन्तर्मुखी बनाया जा सकता है।

जब मनुष्य अन्तर्मुखी होता है तो उसे ज्ञात होता है कि मनुष्यका मानसिक संसार उसके बाह्य संसारसे फैलावमें कम नहीं है। जितना बाह्य संसारका विस्तार है बल्कि उससे कहीं अधिक आन्तरिक संसारका है। अर्थात् मनुष्यको आत्मस्थिति प्राप्त करनेके लिये उतना ही अधिक अध्ययन, विचार और अन्वेषण करना पड़ता है, जितना कोई भौतिक विज्ञानमें रुचि रखनेवाला अन्वेषक करता है। जैसे पदार्थ-विज्ञानका भारी विस्तार है, उसी प्रकार अध्यात्मविद्याका भी भारी विस्तार है। संसारकी सभी वस्तुएँ आत्मसन्तोषके लिये हैं। यदि मनुष्यको आत्मसन्तोषका सरल मार्ग ज्ञात हो जाय तो वह सांसारिक पदार्थोंके पीछे क्यों दौड़े? पर यह आत्मसन्तोष प्राप्त करना सरल काम नहीं। जितनी

कठिनाई किसी इच्छित बाह्य पदार्थके प्राप्त करनेमें होती है, उससे कहीं अधिक कठिनाई आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें होती है। आत्मज्ञान मनकी साधनासे उत्पन्न होता है। जबतक मन निरवलम्ब नहीं हो जाता, पुरुषार्थीको स्वरूपका ज्ञान नहीं होता। पर मनका सहजस्वभाव आत्मासे इतर वस्तुपर अवलम्बित होकर रहना है। उसे अपनी इस आदतसे मुक्त करनेमें जितना प्रयास करना पड़ता है, वह कल्पनातीत है।

जब मनुष्य चेतनाके प्रयासको अपनी ओर मोड़नेमें समर्थ हो जाता है तो उसे सबसे अधिक प्रिय वस्तु अपना-आप ही हो जाता है। फिर वह किसी भी सांसारिक वस्तुमें अपना मन नहीं फँसाता। उसका मन स्वभावतः आत्माकी ओर ही जाने लगता है। ऐसी स्थितिमें पुरानी सभी मानसिक ग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं और नयी मानसिक ग्रन्थियाँ बनतीं नहीं। फिर मनुष्यका जीवन प्रकाशमय हो जाता है, ऐसे व्यक्तिके विचार आत्मनियन्त्रणमें रहते हैं। उसके मनमें किसी प्रकारकी आत्मग्लानिकी भावना नहीं आती। वह सदा स्वस्थचित रहता है। इस प्रकारके स्वास्थ्यको प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको जब कभी अवसर मिले, आध्यात्मिक चिन्तनमें समय लगाना चाहिये और उसको अपनी आदत बना लेना चाहिये।

श्रीहनुमान-स्तुति

(श्रीगजेन्द्रसिंहजी 'गुरुदास')

हे मारुतनन्दन! हे जगवन्दन!! हे शंकर अवतारी।
हे दुष्टनिकन्दन! हे दुखभंजन!! स्तुति करें तिहारी॥
जय मंगलमूर्ति मंगल सूरति मंगलमय मुदकारी।
मंगल अवतारी मंगलकारी सकल अमंगलहारी॥
तव मात अंजनी तात केशरी गुरु रवि स्वामि खरारी।
सुर नर मुनि झारी भूप भिखारी निशिदिन करत गुहारी॥
नखशिख छवि अनुपम अंग वज्र सम तेज सूर्य सम भारी।
तन कनक बरन सम अमित पराक्रम आगम निगम उचारी॥
बल बुद्धि प्रदाता विद्या दाता त्राता गुन आगारी।
सिधि निधि भण्डारी परम उदारी अजर अमर अविकारी॥

अतुलित बलधारी कपितनुधारी ब्रह्मचर्य व्रतधारी।
कर मुद्गरधारी गिरवर धारी अद्भुत आयुधधारी॥
श्रीराम सहायक पायक लायक सायक भक्त पुजारी।
बानर कुल नायक हरिगुण गायक वरदायक फलचारी॥
अतिशय बड़भागी प्रभु अनुरागी सेवक आज्ञाकारी।
तव हृदय मँझारी जनकदुलारी दशरथ अजिर बिहारी॥
संतन हितकारी अति उपकारी सुखकारी दुखहारी।
खल दल संहारी भव भयहारी अघहारी असुरारी॥
हे संकटमोचन! पिंगललोचन!! हरिजन रोचनकारी।
'गुरुदास' अनारी शरन तिहारी चरन-कमल बलिहारी॥

हे अंजनीकुमार! व्याधि हरहु तिरताप की।
कर लीजे स्वीकार, मंगल स्तुति आपकी॥

साधकोंके प्रति—

निष्कामभावनासे लाभ और सकामभावनासे हानि

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हम सब स्वरूपतः परमात्माके ही अंश हैं—
ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

(रा०च०मा० ७।११७।२)

परंतु ऐसा होनेपर भी कामनाके कारण—
 सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाई॥

(रा०च०मा० ७।११७।३)

कीर (तोता) पीनेमें और मर्कट (बन्दर) खानेमें बँध जाता है। संसारमें भी सभी खाने-पीने (भोग भोगने) —में ही बँधे हुए हैं। यदि कामना न हो तो बन्धन न हो। कामनाकी पूर्ति और अपूर्ति दोनों अवस्थाओंमें पराधीनता ज्यों-की-त्यों रहती है, फिर भी जबतक कामनाकी पूर्ति नहीं होती, तबतक तो पराधीनताका अनुभव होता ही है; पर जब कामनाकी पूर्ति हो जाती है, तब अन्तःकरणमें ऐसा अँधेरा छा जाता है कि पराधीनताका अनुभवतक नहीं हो पाता है। कामनाकी पूर्ति होनेसे अभिमान, अज्ञान, पराधीनता आदि विशेषरूपसे बढ़ते हैं। अतएव कामनाकी पूर्तिसे हानि ही होती है, लाभ कुछ भी नहीं होता। मनुके अनुसार केवल धर्मानुष्ठान एवं भगवद्भक्ति—भगवद्दर्शनकी कामना ही लाभकारिणी कल्पलता है।

संसारी कामनाओंकी पूर्ति होनेपर अभिमान बढ़ जाता है, जो आसुरी-सम्पत्तिका मूल कारण है (गीता १६।४)। अभिमान बहेड़ेके वृक्षके समान है, जिसकी छायामें कलियुग अथवा सम्पूर्ण आसुरी-सम्पत्ति निवास करती है*। कामना पूरी होनेपर प्रसन्नता होती है, जिससे घमण्ड आ जाता है। घमण्डी पुरुष धर्मसे च्युत हो जाता है। अतएव कामनाकी पूर्ति होनेसे

जितना पतन होता है, उतना कामनाकी अपूर्तिसे नहीं होता। भगवान् ने भी कहा है कि ‘आशापाशशतैर्बद्धाः’ (गीता १६।१२)—आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य ‘पतन्ति नरकेऽशुचौ’ (१६।१६)—अपवित्र नरकोंमें ही गिरते हैं।

एक बात और समझनेकी है कि कामना-पूर्ति होनेपर भी कामना कभी मिटती नहीं, अपितु और अधिक बढ़ती जाती है— **‘जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥** (रा०च०मा० ६।१०१।२)^१ एक कामना पूरी होनेपर दूसरी कामना पैदा हो जाती है, जिससे कामनाओंका कभी अन्त ही नहीं हो पाता। कामनाओंके रहते परमात्माकी प्राप्ति अथवा तत्त्व-ज्ञान असम्भव है। वस्तुतः कामना करनेसे अपूर्ति (अभाव) बढ़ती है और कामनासे रहित होनेपर अपूर्ति सदाके लिये मिट जाती है।

कामनाको पूरी करनेमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं है, परंतु कामनाको मिटा देनेमें सब स्वतन्त्र हैं। यदि मनमें कोई कामना नहीं है तो किसीके भी अधीन अर्थात् पराधीन होनेकी आवश्यकता नहीं है, किसीकी भी सहायताकी आवश्यकता नहीं है।

कामनाके रहनेपर, कामनाकी पूर्ति होनेपर और कामनाके मिटनेपर—इन तीनों अवस्थाओंपर आप गहरा विचार करें तो यह भलीभाँति अनुभव हो सकता है कि कामनाके रहनेपर बड़ी छटपटी होती है। कामनाकी पूर्ति होनेपर दादकी खुजलीकी तरह थोड़ा-सा सुख होता है, (खुजलीमें पहले सुख होता है, फिर जलन होती है। किंतु खुजली और जलन दोनों ही रोग हैं) परंतु कामनाके मिटते ही शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है—किसी

* महाभारतमें नल-दमयन्तीके उपाख्यान (वन० ७२। ३८)-में आता है कि कलियुग नलके शरीरसे निकलकर बहेड़ेके वृक्षमें प्रवेश कर गया था। इसलिये उसकी छायामें रहनेवालेको कलियुग प्रभावित करता है।

१. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्धते ॥ (श्रीमद्भागवत ९।१९।१४)

‘विषयोंके उपभोगसे कामना कभी शान्त नहीं होती, अपितु अग्निमें घीकी आहुतिके समान वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।’

बुझै न काम अगिनि तुलसी कहूँ, बिषय भोग बहु घी ते ॥ (विनयपत्रिका १९८)

संत, शास्त्र तो कहते ही हैं, स्वयं भगवान् भी सबको कामनासे रहित होनेके लिये कहते हैं। भगवान् समस्त भूतप्राणियोंके सुहृद् हैं—‘सुहृदं सर्वभूतानाम्’ (गीता ५।२९) अतः वे वही बात कहेंगे, जिसमें हम सबका परम हित होता हो और जिसके पालनमें हम सब समर्थ हों। अतएव हम सब सुगमतापूर्वक समस्त संसारी कामनाओंका त्याग कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

भास्वर हो मेरा वर्तमान,
मैं गाऊँ तेरा दिव्य गान।
मेरे गायन के गुंजन से,
गंजित हो जाए प्राण-प्राण॥

अन्तकालकी भावना

(श्रीबजरजोरसिंहजी)

मृत्युके समय मनुष्य सबसे अन्तमें जो विचार करता है, जिसका चिन्तन करता है, उसका अगला जन्म उसी प्रकारका होता है। इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

अर्थात् हे कौन्तेय! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहता है। इसी सन्दर्भमें श्रीमद्भागवतमें राजर्षि भरतका चरित्र आया है, जिन्होंने पृथ्वीका एकच्छत्र राज्य त्यागकर वैराग्य लिया, पर एक मृगमें आसक्ति हो जानेके कारण उन्हें मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। श्रीमद्भागवतमें उनकी मृत्युके समयका वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय भी वह हरिणशावक उनके पास बैठा पुत्रके समान शोकातुर हो रहा था। वे उसे इस स्थितिमें देख रहे थे और उनका चित्त उसीमें लग रहा था। इस प्रकारकी आसक्तिमें ही उनका शरीर भी छूट गया। तदनन्तर उन्हें अन्तकालकी भावनाके अनुसार अन्य साधारण पुरुषोंके समान मृगशरीर ही मिला। किंतु उनकी साधना पूरी थी, इससे उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट नहीं हुई।*

उपर्युक्त प्रसंग भरत-चरित्रसे है। वानप्रस्थ-आश्रममें राजर्षि भरत एक दिन नदीमें स्नान करके सन्ध्या कर रहे थे। उसी समय एक गर्भवती हरिणी वहाँ जल पीने आयी। मृगी पानी पी ही रही थी कि कहीं पासमें ही सिंहकी भयंकर गर्जना हुई। भयके मारे मृगी पानी पीना छोड़कर छलाँग मार भागी। मृगीका प्रसवकाल समीप

* तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥ (श्रीमद्भा० ५।८।२७)

उस समय भी वह हरिणशावक उनके पास बैठा पुत्रके समान शोकातुर हो रहा था। वे उसे इस स्थितिमें देख रहे थे और उनका चित्त उसीमें लग रहा था। इस प्रकारकी आसक्तिमें ही मृगके साथ उनका शरीर भी छूट गया। तदनन्तर उन्हें मृगशरीर ही मिला। किंतु उनकी साधना पूरी थी, इससे उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट नहीं हुई।

आ चुका था, भयकी अधिकता और पूरे वेगसे उछलनेके कारण उसके पेटका मृगशावक बाहर निकल पड़ा और नदीके प्रवाहमें बहने लगा। हरिणी तो इस आघातसे कहीं दूर जाकर मर गयी। सद्यःप्रसूत मृगशावक भी मरणासन्न था। राजर्षि भरतको दया आ गयी। वे उसे प्रवाहमेंसे उठाकर आश्रममें ले आये। वे बड़े स्नेहसे उस मृगशावकका लालन-पालन करने लगे। धीरे-धीरे उसमें



उनका मोह और फिर आसक्ति हो गयी। भरतजीको मृगसे आसक्ति हो गयी थी, इसलिये उन्हें अगला जन्म मृगका ही मिला, पर उनकी स्मृति बनी रही, इसलिये उन्होंने मृगशरीरमें रहते हुए भी दुबारा आसक्ति नहीं होने दी। मृगका शरीर छूटनेपर उनका अगला जन्म ब्राह्मणकुलमें हुआ। इस जन्ममें भी भगवान्की कृपासे अपनी पूर्व जन्म-परम्पराका स्मरण रहनेके कारण वे इस आशंकासे कि कहीं फिर कोई विघ्न उपस्थित न हो जाय, अपने स्वजनोंके संगसे भी बहुत डरते थे। हर समय जिनका

एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न

उस समय भी वह हरिणशावक उनके पास बैठा पुत्रके समान शोकातुर हो रहा था। वे उसे इस स्थितिमें देख रहे थे और उनका चित्त उसीमें लग रहा था। इस प्रकारकी आसक्तिमें ही मृगके साथ उनका शरीर भी छूट गया। तदनन्तर उन्हें मृगशरीर ही मिला। किंतु उनकी साधना पूरी थी, इससे उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट नहीं हुई।

कहते हैं कि भक्त प्रह्लादकी भी श्रीनारायण भगवान्‌में पहले आस्था नहीं थी। वे पहले अपने पिताके कहनेपर, पिताजीको ही भगवान् मानते थे, पर एक दिन बस्तीके बाहर एक कुम्हारिन घड़ा पका रही थी, घड़ा पकानेके लिये उसने कच्चे घड़ोंका आँवा लगा दिया था, पर भूलसे एक घड़ेमें बिल्लीके बच्चे थे, वह घड़ा भी उसी आँवामें लग गया था। उन बच्चोंको बचानेके लिये वह ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए कह रही थी—‘दीनदयाल दीनानाथ मेरी डोरी तेरे हाथ’। इसीको बार-बार ऊँचे स्वरमें गा रही थी। इतने में भक्त प्रह्लाद पहुँच गये और उन्होंने पूछा—माताजी! ये क्या कह रही हो? तो फिर उस कुम्हारिनने पूरी बात बतायी और ये कहा—अब इन बिल्लीके बच्चोंको केवल विष्णुभगवान् ही बचा सकते हैं, उनके सिवा और कोई नहीं। इसीलिये मैं उनसे प्रार्थना कर रही हूँ। जब दूसरे दिन भक्त प्रह्लाद आये तो उन्होंने देखा कि जिस घड़ेमें बिल्लीके बच्चे थे, वह घड़ा बिलकुल कच्चा रखा था, बिल्लीके बच्चे भी सकुशल थे। उसी क्षणसे भक्त प्रह्लादको श्रीभगवान्‌में पूरा विश्वास और आस्था हो गयी और वे श्रीनारायण भगवान्‌के पक्के भक्त बन गये। इसी तरह हमें भी श्रीभगवान्‌में आस्था रखना चाहिये और मनमें विश्वास रखना चाहिये कि इस संसारको कोई शक्ति चला रही है और वह शक्ति है, श्रीभगवान्‌की। जब हमारे अन्दर ऐसा भाव और विश्वास पैदा हो जायगा तो हम जरूर श्रीभगवान्‌की भक्ति करने लग जायँगे और स्वर्ग एवं मोक्षमार्गकी ओर बढ़ेंगे। हमें कम उम्रसे ही ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये, जिससे हमारी भावना और ईश्वरकी याद अन्तकालमें भी बनी रहे।

आनन्दमय जीवनके स्वर्णिम सूत्र

(से०नि०बिग्रेडियर श्रीकरणसिंहजी चौहान)

जीवनका प्रत्येक पल आनन्दका स्रोत है। हमारी मनोदशाको हमारे मस्तिष्कमें उपलब्ध लगभग २०० रसायन प्रभावित करते हैं। चिन्ताकी अवस्थामें मस्तिष्कसे एनडोर्फिन रसायनका प्रवाह होता है, जो कि मोरफिनकी भाँति है तथा पीडाहारकके रूपमें कार्यकर प्रसन्नचित्त रहनेमें हमारी सहायता करता है। चिन्ता एक आदतकी तरह है, जिसे हमने दूसरोंके मापदण्डोंसे अपनाया है। चिन्ताके साथ न तो कोई जन्मा है न जन्मेगा। अपनी धारणाओंमें बदलाव लानेसे ही चिन्तासे मुक्ति पायी जा सकती है।

प्रसन्नता तथा आनन्द किसी भी औषधिके रूपमें नहीं आते, जिसका सेवनकर सदैव प्रसन्नताकी स्थितिमें रहा जा सके। हालाँकि वैज्ञानिकोंने एक औषधि ‘प्रोजेक’ बनायी है, जो प्रसन्नता लानेमें सहायक होती है। लेकिन सदैव प्रसन्नचित्त और आनन्दित रहनेके लिये हमें स्वयं ही कुछ उपायोंको अपनाना उचित होगा।

आजके युगमें जबकि विज्ञान, संचार, तकनीकी-प्रगति, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितिमें तीव्र परिवर्तन, पर्यावरण-प्रदूषण, जनसंख्या-विस्फोट, बेरोजगारी आदि चरम सीमापर हैं तथा रोगोंके रूपमें आनेवाले कलकी परछाई हमें स्पष्ट दिखायी दे रही है। ऐसी स्थितिमें हमें स्वयं ही सही दिशाका चुनाव करते हुये जीवनका ध्येय निर्धारित करना होगा। इसके लिये कुछ उपाय विचारणीय हैं—

समय परिवर्तनशील है—बर्नाड शॉने कहा था—
‘जीवनभरतक प्रसन्नता! इसे कोई भी व्यक्ति सहन नहीं कर सकता। यह तो इस पृथ्वीको नरक बना देगी।’
सुख-दुःख, चिन्ता-प्रसन्नता, रोग-स्वास्थ्य एक ही गाड़ीके दो पहियोंकी भाँति हैं तथा इन्हें समान दृष्टिसे देखनेपर दुःख, चिन्ता एवं तनाव कभी नहीं होगा। एक बार एक राजाने कुछ बुद्धिजीवियोंसे यह पूछा कि मुझे एक पंक्तिमें यह बताओ कि किस युक्तिसे मैं अपने जीवनमें सुख एवं दुःखके क्षणोंको समान रूपसे ग्रहणकर

आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकूँ ? बुद्धिजीवियोंने गहन विचार-विमर्शके पश्चात् सुझाया, 'राजन्, आप सदैव हर स्थितिमें यह विचार करें कि यह समय भी बीत जायगा ।'

संत तरेसाने कहा था, 'कोई भी परिस्थिति तुम्हें विचलित नहीं कर सकती, कोई भी परिस्थिति तुम्हें भयभीत नहीं कर सकती, क्योंकि वह तो क्षणभरकी ही होती है।'

जीवन एक महाभारत है, जिसमें युद्ध-कौशलकी उत्कृष्टता अति आवश्यक है अर्थात् आनेवाले कलकी तैयारी एक युद्धकी भाँति करनी आवश्यक है। ‘यह भी बीत जायगा’ की धारणासे आशय आलस्य और आरामदायक जीवन व्यतीतकर क्षणिक आनन्द-प्राप्तिसे न होकर एक ऐसे योद्धासे है, जो कि सकारात्मक सोच, कठिन परिश्रम एवं लगातार संघर्षसे विपरीत परिस्थितियोंको अपने अनुकूल बनाता हुआ सदैव प्रगतिके पथपर अग्रसर होता है।

जीवनको प्रकृतिके अनुरूप ढालें एवं सरल बनायें— किसी भी सरल वस्तु एवं घटनाको हम अपनी शिक्षा, परिवेश एवं अर्द्धविवेकसे दुविधापूर्ण बनानेका प्रयास करते हैं। ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रकृतिने हमें कान एवं आँखें प्रदान की हैं। जबतक हमारी दृष्टि ध्येयपर है, हम सदैव प्रगतिके पथपर आगे बढ़ते जाते हैं, परंतु जैसे ही ध्येयसे हमारा ध्यान हटा, कई प्रकारकी काल्पनिक चिन्ताएँ हमें तुरंत घेर लेती हैं। प्रकृतिके साथ सहयोग करते हुए जिस सरलतासे नदीका जल प्रवाहित होता है, पक्षी खुले आकाशमें विचरण करते हैं, सूर्य-चन्द्र उदय एवं अस्त होते हैं, वनस्पतियाँ चारों ओर सुगन्ध फैलाती हैं, उसी प्रकार मनुष्यको भी सरल भावसे आनन्दित होकर अपना जीवन-निर्वाह करना चाहिये। प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध व्यवहार करनेपर निश्चित ही दुष्कर परिणाम प्राप्त होंगे—जैसे

सीखनेका अर्थ है प्रगति करना और स्वयंको विकसित करना। हेलन केलरने जीवन-पर्यन्त अपनी शारीरिक असमर्थताओंके होते हुए भी अपने आपको

सीखनेकी प्रवृत्तिमें स्मरणीय उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है—‘जब कभी एक द्वार बन्द होता है, तो प्रभु अनगिनत द्वार खोलकर हमें अवसर प्रदान करते हैं, लेकिन हम उस बन्द द्वारपर ही निराश बैठे प्रतीक्षा करते रहते हैं।’

आदतोंके भँवरसे बचाव—बार-बार एक ही तरहके कार्य करनेसे यह आदतमें परिवर्तित हो जाता है। आदतें ही चरित्रका निर्माण करती हैं और चरित्र भाग्यका निर्माता है। इसलिये इसपर गम्भीरतासे हर समय ध्यान करना चाहिये कि कोई भी रोजमर्राका कार्य एक आदत तो नहीं बन रहा है। आदतोंको छोड़ना अति कठिन है। एक बार एक वृद्ध एक युवाके साथ जंगलमें भ्रमण कर रहा था। उसने युवाको सर्वप्रथम एक उगता हुआ पौधा उखाड़नेको कहा। युवाने उसे उखाड़कर फेंक दिया। फिर एक दिन बड़े पौधेको उखाड़नेके लिये कहा। वह भी उस युवाने उखाड़ दिया। इसके पश्चात् एक बड़ा पौधा उखाड़नेके लिये कहा, जिसे भी उसने थोड़े प्रयाससे उखाड़ दिया, मगर चौथा पौधा जो कि पेड़ बन गया था, वह युवा उसे नहीं उखाड़ पाया। यही दशा हमारी आदतोंकी होती है। आदतको जड़से उखाड़नेका एक सरल तरीका है—उस आदतके विपरीत आदत डालनेका प्रयास करना। अगर आप सदैव चिन्ताग्रस्त रहते हैं, तो प्रसन्नचित्त रहनेका प्रयास करें एवं प्रसन्नचित्त, सकारात्मक सोचवाले व्यक्तियोंकी संगत करें।

सेवाके लिये समर्पण—बिना किसी स्वार्थ एवं प्रतिफलकी आशाके दूसरोंकी सच्चे हृदयसे सेवा करनेसे अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति होती है। यह सेवा निष्काम कार्यकी श्रेणीमें आती है। स्वामी विवेकानन्दने कहा था—‘प्रभु उन्हींकी सहायता करता है, जो दूसरोंकी सहायता करते हैं।’ इस सन्दर्भमें जीवनका ध्येय हर वक्त यह हो—‘मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ?’ तो अवश्य सुखका अनुभव होता है। एक

संतसे किसीने सदैव प्रसन्न रहनेका उपाय पूछा तो उन्होंने कहा कि किसी अन्य व्यक्तिको प्रसन्न करो, आप स्वयं भी प्रसन्नचित्त हो जायँगे। एक सभ्य और ज्ञानी व्यक्ति सदैव सुख देकर प्रसन्न होता है एवं अज्ञानी व्यक्ति दुःख देकर प्रसन्न होता है।

सही दिशामें प्रयाससे आनन्दप्राप्ति—निम्नलिखित सात बातोंके बचावसे अवश्य ही आनन्दकी प्राप्ति होती है—१- सदैव अपने ही बारेमें बात करना, २-सदैव स्वार्थी बने रहना, ३-अपने कर्तव्यका समयपर निर्वाह नहीं करना, ४-हर वाक्यमें ‘मैं’, ‘मेरा’ का प्रयोग करना, ५-हर समय अपने भौतिक सुखके बारेमें सोचना, ६-हर समय यह लालसा रखना कि आपकी प्रशंसा ही की जाय, ७-लालचभरे विचारोंसे सदैव अपने बारेमें अन्य लोगोंके विचार सुननेके लिये आतुर रहना।

जिस प्रकार सामाजिक नियम हर कालके लिये बनाये जाते हैं एवं परिवर्तनशील हैं, उसी प्रकार सुखकी परिभाषा तो परिवर्तनशील है, मगर आनन्दकी परिभाषा सदैव एक ही रहती है, क्योंकि यह तो एक आन्तरिक अनुभूति है। यह शास्त्र, पुस्तकें एवं लेख पढ़नेसे नहीं बल्कि सत्यको आचरणमें ढालनेसे ही मिलती है। एक कागजपर शहद लिखकर और उस कागजका सेवन करनेसे शहदकी मिठास प्राप्त नहीं हो सकती, न ही गधेको गंगाजलमें नहलानेसे वह बुद्धिमान् हो जाता है। सही दिशामें प्रयास एवं परिश्रमसे आनन्दकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है। चाबी हमारे पास है और ताला भी हमने ही जकड़ रखा है—उसे खोलना भी हमें ही पड़ेगा, क्योंकि हर व्यक्ति आनन्दप्राप्तिका अधिकारी है। अपने आपको असमर्थ, निराश न मानकर अपनी विशाल क्षमताका भान, निष्काम कर्म, अध्ययन, सत्संग, स्वाध्याय, प्रार्थना, पूजा-अर्चना, ध्यान और सेवासे सहज ही किया जा सकता है।

अन्तमें सफलतासे बढ़कर कोई निधि नहीं, सफल

पुरुषोत्तममासका महत्त्व एवं कर्तव्य

भगवान् विष्णुके पूजनहेतु सभी मासोंमें पुरुषोत्तममास (अधिमास अथवा मलमास) अत्यन्त विशिष्ट है। भगवान् नारायणने स्वयं कहा है—

मासाः सर्वे द्विजश्रेष्ठ सूर्यदेवस्य संक्रमाः।
अधिमासस्त्वसंक्रान्तिर्मासोऽसौ शरणं गतः॥
मम प्रियतमोऽत्यन्तं मासोऽयं पुरुषोत्तमः।
अस्याहं सततं विप्र स्वामित्वे पर्यवस्थितः॥

(पद्मपुराण, पुरुषोत्तममासमा० १७।१४-१५)

हे द्विजश्रेष्ठ ! सभी माह सूर्यदेवकी संक्रान्तिके कारण होते हैं, परंतु अधिकमासमें संक्रान्ति नहीं हुई, इसलिये वह मेरी शरणमें आया है। तभीसे यह पुरुषोत्तममास मुझे अत्यन्त प्रिय है। हे विप्र ! मैं सदैव इस पुरुषोत्तममासके स्वामीके रूपमें प्रतिष्ठित रहता हूँ। आगे भगवान् कहते हैं—‘नालभ्यं दृश्यते किञ्चिन्मत्प्रिये पुरुषोत्तमे’ (पद्मपुराण, पुरुषोत्तममासमाहा० १७।२२)। मेरे प्रिय पुरुषोत्तममासमें जप आदि करनेसे संसारमें कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहती।

वस्तुतः संक्रान्तिरहित मासको अधिकमास, मलमास या पुरुषोत्तममास कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद (२२।३०)–के ‘मलिम्लुचाय स्वाहा’ तथा ऋक्० (१।१५।८) आदिमें मलमास या पुरुषोत्तममासकी महिमाका स्पष्ट उल्लेख है। अथर्व० (५।६।४)–में इसे भगवान्का आवासगृह बतलाया गया है—‘त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः।’ शिवपुराण (२।५।२।५२)–में भी इसका उपबृंहण हुआ है, जहाँ मलमास, अधिमास या पुरुषोत्तममासको साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप कहा गया है, वहाँ देवताओंके वचन हैं—‘मासानामधिमासस्त्वं व्रतानां त्वं चतुर्दशी’ अर्थात्—प्रभो ! शिव ! आप महीनोंमें अधिमास एवं व्रतोंमें चतुर्दशी (शिवरात्रि) व्रत हैं। रघुनन्दनके ‘मलमासतत्त्व’ तथा बृहन्नारदीय एवं पद्मपुराणके नामसे प्राप्त होनेवाले पुरुषोत्तममास–माहात्म्यमें इसकी महामहिमा है। एक अधिमासके बाद पुनः दूसरा अधिमास २८ से लेकर ३२ महीनोंके बीच पुनः पड़ता है और यह चैत्रसे आश्विनतकके महीनोंमें ही होता है। इसमें निष्कामकर्मोंकी ही अधिक महिमा है। अधिमासने तपस्याकर भगवान् विष्णुसे उनका ‘पुरुषोत्तमनाम’ प्राप्त

किया था। इस प्रकार इसमें शिव–विष्णु दोनोंकी ही आराधना विहित है और यह दोनोंको ही परम प्रिय है। जो सौ वर्ष तप करनेका फल है, वह इसमें एक दिन ही व्रत–तप करनेसे प्राप्त हो जाता है—

सम्यक् चीर्णेन तपसा शतवर्षमितेन च।
यत्फलं लभते विप्र मासेऽस्मिन्नेकवासरात्॥

(पुरुषोत्तममास–माहा० १७।१८)

अन्य समयमें जो लक्ष (एक लाख) गायत्रीमन्त्र–जपका फल होता है, उतना इस मासमें किसी भी एक मन्त्र जपनेसे हो जाता है—

सावित्रिलक्षजापेन लभ्यते यत्फलं नरैः।
सकृन्मन्त्रजपेनैव मासेऽस्मिन्पुलभ्यते॥

(पुरुषोत्तममास–माहा० १७।२१)

इसी प्रकार इसमें गीतापाठ, श्रीराम–कृष्णके मन्त्रों, पंचाक्षर शिवमन्त्र, अष्टाक्षर नारायणमन्त्र, द्वादशाक्षर वासुदेवमन्त्र आदिके जपका लाखगुना, करोड़गुना या अनन्त फल होता है—

द्वादशाक्षरमन्त्रोऽयं यो जपेत् कृष्णसन्निधौ।
दशवारमपि ब्रह्मन् स कोटिफलमश्नुते॥

(पुरुषोत्तममास–माहा० १७।२३)

पाँचों पाण्डव, द्रौपदी, सुदेव, शुकदेव, दृढधन्वा आदिने इसी मासमें धर्म–तपका अनुष्ठानकर परम सिद्धि प्राप्त की थी। इसमें भगवान्की पूजा, दीपदान एवं ध्वजादानकी भी बड़ी महिमा है। इससे अनेक प्रकारके सुख एवं स्वर्गलोककी उपलब्धि होती है—

तस्मात्सर्वात्मना कार्यो दीपः श्रीविष्णुमन्दिरे।

(पुरुषोत्तममास–माहा० १७।३६)

इसी प्रकार इसमें दान–धर्मादिकी भी बड़ी महिमा है। हेमाद्रिने प्रतिदिन भगवान्के अलग–अलग नामोंसे अन्नदानकी विधि बतलायी है। इसमें एक बार भी थोड़ा तिल दान करनेसे या उसके द्वारा हवन करनेसे मनुष्यको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह मुक्त हो जाता है—

तिलान् दत्त्वा सकृद्धत्वा पुरुषोत्तमवासरे।
आत्मबुद्धिं प्रपद्याशु ब्रह्मलोके महीयते॥

(पुरुषोत्तममास–माहा० १८।२३)

उलाहना भी प्रेमतत्त्व है

(डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)

उलाहना भक्तका अन्तर्नाद और प्रेमका प्राकृत स्वरूप है। द्वैतका परम प्रसाद यह प्रेम ही तो है, जो आराध्य और भक्तको एक-दूसरेके लिये दूसरा बनाये रखता है। योगियों, ऋषियोंको भले ही अद्वैत अन्तिम लक्ष्य प्रतीत होता हो, भक्तोंके लिये तो द्वैत ही प्राणरस है। अपना होना और अपना मानना दोनोंको सुख प्रदान करता है। प्रेमका यही मर्म है।

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

(रा०च०मा० ५।१५।६)

यह सुखानुभूति ही प्रेम पल्लवित करती है। प्रेम जब पुष्पित और फलित होता है तो संवाद स्वतः जन्म ले लेता है और परिणाममें सम्बोधन, प्रश्न, सन्तोष-असन्तोष, तृप्ति-अतृप्तिविषयक झिड़की, डाँट-डपट, फटकार और ताना कुछ भी प्रस्फुटित हो सकता है। वस्तुतः यह सख्य भाव है। मैत्रीके इस सोपानपर प्रेम तब 'उलाहना' देनेमें भी नहीं हिचकिचाता और यथार्थ अन्तरमें उद्देलित होने लगता है। वस्तुतः यह अधीरता ही भक्तका प्रेमाधिकार है, एकाधिकार है, जो उलाहनाका रूप लेकर प्रेमकी तड़प प्रकट कर रहा होता है। गूढ़तः यह भक्ति ही है। आइये, भक्तिके इस स्वरूपका भी दर्शन करें।

भगवान्, भक्त, भक्ति और भजन 'भग' तत्त्वके नियामक घटक हैं। हम चाहें तब भी इन्हें पृथक् नहीं कर सकते। भगवान्से भक्तको अलग नहीं किया जा सकता तो भक्तको भक्तिसे नहीं निकाला जा सकता। भक्तिसे भजनको नहीं निचोड़ा जा सकता तो भजनसे भक्तिको नहीं छाना जा सकता। इसी तरह भजनसे भक्ति, भक्तिसे भक्त और भक्तसे भगवान्को भी पृथक् नहीं किया जा सकता; क्योंकि यही प्रेमसिंचित सृष्टितत्त्व है। रामायण यही तो प्रतिपादित करती है—

सीय राममय सब जग जानी।

(रा०च०मा० १।८।२)

भगवान् श्रीकृष्णको प्रेमावतार भी कहा गया है और कृष्णको ही सर्वाधिक उलाहना दिये गये हैं; क्योंकि बोलनेका अधिकार तो प्रेम ही दे सकता है। नटखट,

माखनचोर, कंकरमार, कपटी, छलिया, कालिया, काला, साँवला-जैसे अनेकानेक उलाहने तो कृष्णके पर्याय हो गये हैं। चितचोर, मनमोहन आदि भी मूलतः उलाहनाके रूपमें ही प्रयुक्त शब्दावली है, जो शब्द-विग्रहसे स्वतः उच्चकोटिमें निरूपित हो गयी है, इसलिये ये शब्द विशेष संज्ञा और विशेषण पा गये हैं। प्रेमाधिपतिके प्रेमाध्यने इन्हें अमृत बना दिया है, अतः ये इनके विशेषण हो गये हैं।

अब देखिये जरा भक्तों, कवियोंने कान्हाको कैसे सम्बोधित किया है, कैसे लताड़ा है, क्या-क्या नहीं कहा है। चूँकि प्रेम इन्हें नहीं देखता। इसलिये हम भी इन्हें सीस नवाते हैं तथापि वास्तविकताके धरातलपर जाकर तो देखें कि इस परम शक्तिमान्को हम क्या-क्या कह गये हैं! कैसे-कैसे कटाक्ष किये हैं!! कैसे व्यंग्यबाण चलाये हैं!!!

कृष्ण-द्रौपदीके सख्यको कौन नहीं जानता? जो चीर-हरणके प्रसंगमें दिये गये कृष्णाके उलाहनेसे जगजाहिर है। कौरव-सभा, पाण्डवोंकी उपस्थिति, दुर्योधनका आदेश और दुःशासनका कृत्य। लज्जाका अनावरण सुननेमें भी रोंगटे खड़े कर देता है तो आचरण कितना दारुण होगा! सोचा ही जा सकता है। भीष्मादिसे किया गया अनुनय भी जब व्यर्थ हो गया तो कृष्णाका कारुण्य क्रन्दन कर उठा और द्रौपदीने कृष्णको भी नहीं छोड़ा। सम्बोधित किया—'द्वारकावासिन्।' द्रौपदीने मित्र, सखा, मुरारी कोई शब्द काममें नहीं लिया। आवेगने कटाक्ष किया—'हे द्वारिकावासिन्!' अर्थात् इतनी देर हो गयी, तू नहीं आया तो क्या मेरे मनसे निकल तू द्वारकामें रहने लगा है! हे यदुनन्दन! तुम कहाँ हो? तुम देख नहीं रहे हो यह सब! द्रौपदी और क्या कहती? कहा—'हे कृष्ण! हे द्वारकावासिन्! क्वासि यादवनन्दन।'

वाहरेप्रेम! क्या उलाहना है? अपनत्वकी यह विरहाग्नि क्षोभसे क्रोधमें बदल जाती है। अपनत्वकी यह क्रोधाग्नि बस देखते ही बन पड़ती है। उलाहनाके इस आधिकारिक पात्र द्रौपदीको प्रणाम! अगले चरणमें वह फिर कहती है—

'कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।'

(महा०सभा० ६८।४२)

परमात्माके दर्शनमें बाधक कौन ?

(डॉ० श्रीरामेश्वर प्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०)

‘जीवन का है लक्ष्य, ‘प्राणि सब,’ पायें परम सच्चिदानन्द ।
मोह-बन्ध से मोक्ष रहे, हो शान्ति अगाध सदा निर्द्वन्द्व ।
निर्मल अमल विमल तन मन हो, रहे न कोई भी छलछद्म ।
सबके अन्तस् में आजाये, आत्मज्ञान-उन्मेष अमन्द ॥’
मानव-जीवन बड़ा दुर्लभ होता है, जो बड़े ही
पुण्यसे प्राप्त होता है । गोस्वामी तुलसीदासजीने उल्लेख
किया है, कि—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

(रा०च०मा० ७।४३।७)

मोक्षका श्रेष्ठ साधन यह मानव-जीवन है । यथा
उल्लेख है कि—

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥

(रा०च०मा० ७।४३।८)

प्रश्न उठता है कि अनुपम साधन-धाम यह तन
प्राप्त होनेपर भी मनुष्य अपने लक्ष्यसे भटक क्यों जाता
है ? उत्तर भी स्पष्ट है कि मायासे प्रेरित होकर मनुष्य
संसारके चक्रव्यूहमें बुरी तरह बँध जाता है । यथा—
फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥

(रा०च०मा० ७।४४।५)

गोस्वामी तुलसीदासजीने परमात्म-दर्शनमें सबसे
बड़ा बाधक तत्त्व काम या इच्छाको निरूपित किया है ।
काम या कामना-विकार अनैतिक ऐषणा है । अतः यह
हेय है । यथोक्त है कि—

तब लगि कुसल न जीव कहूँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।

जब लगि भजत न राम कहूँ सोक धाम तजि काम ॥

(रा०च०मा० ५।४६)

परमात्म-प्राप्तिमें बाधक ‘काम’ तत्त्वको दूर करने
हेतु परम श्रेयस्कर साधन भगवन्नामस्मरण है । गोस्वामी
तुलसीदासने कामादि विकारोंकी निवृत्तिके लिये श्रीरामके
स्मरण एवं आश्रयको ही श्रेष्ठ निरूपित किया है ।
यथा—

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ॥

जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरें चाप सायक कटि भाथा ॥

ममता तरुन तमी अधिआरा । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥

तब लगि बसति जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाही ॥

(रा०च०मा० ५।४७।१—४)

श्रीराम या परमात्माके नाम और उनके सुचरित्रमें
लगन एवं समर्पण समस्त विकारोंका विनाश करता है ।
यथा उल्लेख है कि—

अब मैं कुसल मिटे भय भारे । देखि राम पद कमल तुम्हारे ।
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला । ताहि न ब्याप त्रिविध भव सूला ॥

(रा०च०मा० ५।४७।५—६)

ईश्वरकी प्राप्तिमें बाधक काम, क्रोध, लोभ तथा
मोह ही हैं । ये विकार मानव-जीवनको नरक बना देते
हैं । यथा निर्दिष्ट है कि—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।

सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि संत ॥

(रा०च०मा० ५।३८)

श्रीमद्भगवद्गीताका भी यही कथन है कि—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

(३।३७)

और भी उल्लेख है कि—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

(१६।२१)

अस्तु, ईश्वर-दर्शनमें सर्वाधिक बाधक तत्त्व
कामादिक विकार हैं, जो हेय एवं परिहार्य हैं ।

परमात्माके दर्शनमें व्यक्तिका अहंकार भी बहुत
बड़ा बाधक है । गोस्वामी तुलसीदासने तो यहाँतक कह
दिया है कि व्यक्तिका अहंकार उसे सर्वाधिक शोक-
संतप्त करता है । यथा—

सकल सोक दायक अभिमाना ॥

(रा०च०मा० ७।७४।६)

अन्यत्र भी उल्लेख है कि—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान ।

भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान ॥

(रा०च०मा० ५।२३)

लेता है। यथोक्त है कि—
 समदरसी इच्छा कुछ नहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
 अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदय बसइ धनु जैसैं॥
 (रा०च०मा० ५। ४८। ६-७)

परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक इन विकारादिसे मुक्त होनेपर उस परमेशका स्मरण, उसकी भक्ति और मनकी निर्मलता अविलम्ब ही साधकको परमात्मासे मिला देती है एवं उसके प्रत्यक्ष दर्शन करा देती है। भगवत्-स्मरण-विहीनता तो विपत्तिका आधार निर्दिष्ट है। यथा उल्लेख है कि—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजन न होई ।
(रा०च०मा० ५।३२।१)

इसी प्रकार भक्तिको परम सुख-प्रदायिनी कहा गया है।

नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपा करि अनपायनी ॥
(रा०च०मा० ५ । ३४ । १)

रामचरितमानसमें परमात्मदर्शनके लिये मनकी निश्छलता अनिवार्य कही गयी है। यथा—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।
(रा०च०मा० ५ । ४४ । ५)

और भी उल्लेख है कि—
मन क्रम बचन छाडि चतराई । भजत कृपा करिहिं रघराई ॥

(रा०च०मा० १।२००।६)

निष्कर्ष यह है कि इस असार-संसारमें अहंकार एवं कामक्रोधादि विकार सबसे अधिक निःसार हैं। जब अभिमान गिरता है, तब भगवान् मिलते हैं। जब मनुष्य षड् विकारोंसे मुक्त होता है, तब वह परमात्म-ज्ञानसे युक्त होता है एवं जब व्यक्ति निर्विकार हुआ भगवत्-स्मरणकर सुकृतसंलग्न होता है, तब वह परमसच्चिदानन्द परमात्माके दर्शनको प्राप्त कर पाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने बार-बार सचेत किया है कि भगवद्दर्शनमें कामादिक विकार प्रबल बाधक हैं एवं निर्विकार तथा निष्काम व्यक्तिको परमात्मा स्वयं अपने दर्शन कराता हुआ अपने हृदयमें बैठा

कहिये, सत्संगति पुरुषोंका क्या उपकार नहीं करती? वह बुद्धिकी जड़ताको हरती है, वाणीमें सत्यका संचार करती है, सम्मान बढ़ाती है, पापको दूर करती है, चित्तको आनन्दित करती है और समस्त दिशाओंमें कीर्तिका विस्तार करती है। [भर्तृहरि-नीतिशतक]

‘मेरे साँवरे! तेरी कृपा है’

(डॉ० श्रीगोपालजी नारसन)

वृन्दावन शहरमें एक वैद्य थे, जिनका मकान भी बहुत पुराना था। वैद्य साहब अपनी पत्नीको कहते कि ‘जो तुम्हें चाहिये, एक चिट्ठीमें लिख दो।’ दुकानपर आकर पहले वह चिट्ठी खोलते। सामानके भाव देखते, फिर कान्हासे दुआ करते कि ‘साँवरे! मैं केवल तेरी इजाजतसे तुझे छोड़कर यहाँ दुनियामें आ बैठा हूँ। तू मेरी आजकी व्यवस्था कर देगा। उसी समय यहाँसे उठ जाऊँगा’ और फिर कभी सुबह साढ़े नौ, कभी दस बजे वैद्यजी रोगियोंको दवा देकर वापस अपने गाँव चले जाते।

एक दिन वैद्यजीने दुकान खोली। फिर चिट्ठी खोली तो देखते ही रह गये। एक बार तो उनका मन भटक गया। उन्हें अपनी आँखोंके सामने तारे चमकते हुए नजर आ गये, लेकिन जल्द ही उन्होंने अपने मनपर काबू पा लिया।

आटे, दाल, चावल आदिके बाद पत्नीने लिखा था, ‘बेटीके दहेजका सामान लाना है जी।’ कुछ देर सोचते रहे, फिर बाकी चीजोंकी कीमत लिखनेके बाद दहेजके सामने लिखा ‘यह काम मेरे कान्हाका है, कान्हा ही जाने।’

एक-दो मरीज आये थे। उन्हें वैद्यजी दवाई दे रहे थे। इसी दौरान एक बड़ी-सी कार उनकी दुकानके सामने आकर रुकी।

दोनों मरीज दवाई लेकर चले गये। वह साहब कारसे बाहर निकले और ‘राधे-राधे’ करके बेंचपर बैठ गये।

वैद्यजीने कहा कि ‘अगर आपको अपने लिये दवा लेनी है, तो आपकी नाड़ी देख लूँ।’ उस आदमीने कहा कि ‘वैद्यजी! मुझे लगता है आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं १५-१६ साल बाद आपकी दुकानपर आया हूँ। आपको पिछली मुलाकातकी बात सुनाता हूँ, फिर शायद आपको सारी बात याद आ जायगी।’

वैद्यजी! मैं ५-६ सालसे इंग्लैंडमें रहता हूँ। इंग्लैंड

जानेसे पहले मेरी शादी हो गयी थी, लेकिन बच्चा नहीं हुआ। यहाँ भी इलाज किया और इंग्लैंडमें भी करवाया, लेकिन हमारी किस्मतमें शायद बच्चा नहीं था। आपने कहा, ‘मेरे भाई! अपने भगवान्से निराश न हो, याद रखो! उसके खजानेमें किसी चीजकी कोई कमी नहीं है। औलाद, माल, धन-दौलत, खुशी, गमी, जीवन-मृत्यु—सब कुछ उसीके हाथमें है। किसी वैद्यके हाथमें कुछ भी नहीं है। अगर औलाद होनी है तो मेरे साँवरेके आशीर्वादसे ही होनी है। औलाद देनी है तो उसे ही देनी है। मुझे याद है, आप बातें करते जा रहे थे और साथ-साथ पुड़िया भी बना रहे थे। फिर आपने मुझसे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? मैंने बताया कि मेरा नाम सतीश है। आपने एक लिफाफेपर कान्हा और दूसरेपर राधे लिखा। फिर दवा लेनेका तरीका बताया। लेकिन जब मैंने पूछा, ‘कितने पैसे?’

आपने कहा—‘बस ठीक है।’ मैंने जोर डाला, तो आपने कहा कि ‘आजका खाता बन्द हो गया है।’

मैंने कहा—‘मुझे आपकी बात समझ नहीं आयी।’ ‘भाई! आजके घर-खर्चके लिये जितनी रकम वैद्यने कान्हाजीसे माँगी थी, वह साँवरेने इनको दे दी है। अधिक पैसे वे नहीं ले सकते।’ मैं बहुत हैरान हुआ और शर्मिन्दा भी हुआ कि मेरे कितने घटिया विचार थे और यह वैद्य कितना महान् व्यक्ति है।

मैंने जब घर जाकर पत्नीको दवा दिखायी और सारी बात बतायी तो उसके मुँहसे निकला वे इंसान नहीं कोई फरिश्ता हैं और उनकी दी हुई दवा हमारी मनोकामना जरूर पूरी करेगी जी। वैद्यजी आज मेरे घरमें तीन बच्चे हैं। हम पति-पत्नी हर समय आपके लिये दुआएँ करते हैं।

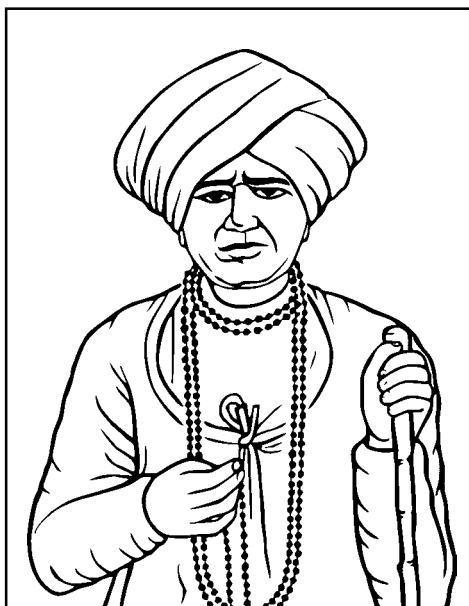
मैं जब भी वृन्दावन छुट्टीमें आया, कार उधर रोकी, लेकिन दुकानको बन्द पाया। कल दोपहर भी आया था, दुकान बन्द थी। एक आदमी पास ही खड़ा

करनेसे ज्ञात होता है कि व्यक्ति एवं समाजकी उन्नतिक

राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्रमें पर्याप्त शक्ति और समृद्धि प्राप्त कर लेनेपर भी हम इन्द्रियोंके दास बने हुए हैं। इन्द्रियसुख-प्राप्तिकी इच्छा द्वेष, क्रोध, भय, अहं एवं अविवेकको तथा अतृप्त लौकिक इच्छाएँ असन्तोष एवं स्वार्थपरताको जन्म देती हैं। अपने सुख, सफलता एवं सुरक्षाके अतिरिक्त हम किसी औरके बारेमें सोच भी नहीं पाते और यही स्वार्थपरता सामाजिक जीवनमें भ्रष्टाचार, अपराध, शोषण, असहिष्णुता एवं कटुताको जन्म देती है। ध्यान रहे शुचिता, शालीनता एवं नैतिकता समाजकी नींवके पत्थर हैं—ये ही राष्ट्रका जीवन हैं। सांस्कृतिक विकासके अभावमें समाजका विकास सम्भव नहीं, संस्कृति ही चरित्र-निर्माण करती है। राष्ट्रीय जीवनमें शान्ति, आनन्द एवं तृप्ति तभी आ सकती है जब हम इन्द्रियोंकी दासतासे मुक्त हो जायँ। अपने निर्धारित कार्यमें उत्कृष्टताकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहकर हम सच्ची समाज-सेवा कर सकते हैं। विद्यार्थी-जगत्में व्याप्त स्वच्छन्दता एवं असंयमपर नैतिकताद्वारा ही अंकुश लगाया जा सकता है। यदि हम अपनी शिक्षण-संस्थाओंमें नैतिक मूल्योंके प्रशिक्षणकी व्यवस्था नहीं कर पाते तो हम अपने अबतकके ऐतिहासिक विकासके प्रति मिथ्या सिद्ध होंगे, अतः वर्तमान शिक्षण-व्यवस्थामें मूल्यपरकताकी अत्यन्त आवश्यकता है।

मरते हंसने उत्तर दिया—‘राजन्! मैं कौआ नहीं हूँ। मैं तो मानसरोवरवासी हंस हूँ; किंतु कुछ क्षण कौआके समीप बैठनेका यह दारुण फल मुझे प्राप्त हुआ है।’

(शास्त्री श्रीमंगलजी उद्धवजी पुरोहित)



ऐसे सत्पुरुष इस कराल कलिकालमें भी हैं। भक्त, महात्मा और ज्ञानीजनोंका उद्गम-स्थान यह आर्यावर्त कभी इनसे सर्वथा खाली नहीं हो सकता। आज हम जिन वीतराग भक्तका चरित्र-चित्रण करने जा रहे हैं, इनका जन्म सौराष्ट्र-देशके वीरपुर गाँवमें हुआ था। ये लोहाणा क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम था—प्रधान और माताका राजबाई। दम्पतीके बड़े पुत्रका नाम बोधाभाई था। प्रथम पुत्रके जन्मसे पाँच वर्ष पश्चात् ठाकुरके गृहमें एक महात्मा अतिथि आये। प्रधान ठाकुरने उन महात्माका यथोचित आतिथ्य किया। महात्माने प्रसन्न होकर ठाकुरसे वरदान माँगनेको कहा। ठाकुरने वरदानरूपमें अपने वंशमें भी महात्माओंकी सेवा करनेवाला एक पुत्र माँगा। महात्मा प्रसन्नचित्तसे 'तथास्तु' कहकर यात्रार्थ निकल गये।

अन्ततोगत्वा साधु-मण्डली जलारामजीके यहाँ पहुँची। मण्डलीके मुखियाने पूछा—‘जला भगतकी

‘और इस लोटेमें?’

‘इसमें जल है।’

चाचाजीने गुड़की गठरी खोलकर देखी तो उसमें सचमुच काठके टुकड़े ही थे और लोटा जलसे भरा था। इस दृश्यको देखकर उस बनिये तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियोंको बड़ा विस्मय हुआ। चाचाजीका क्रोध सर्वथा शान्त हो गया। अब उन्होंने नम्र आवाजमें पूछा—‘कहाँ जा रहा है?’

‘चाचाजी! इस गाँवके बाहर ठहरी हुई साधु-मण्डलीके लिये यह सामान पहुँचाने जा रहा हूँ।’

‘अच्छा’ कहकर चाचाजी दूकानपर चले गये और जलारामजी साधुओंके पास पहुँचे। कहना न होगा, साधुओंके पास जानेपर घी और गुड़ अपने मूल स्वरूपमें बदल गये थे। भगवान् क्या नहीं कर सकते ? जलारामकी वाणी भी झूठी नहीं हुई और चाचाका सन्देह भी दूर हो गया।

इस घटनासे भक्तजीके हृदयमें कितना आनन्द हुआ होगा, इसका अनुमान स्वयं पाठक लगा सकते हैं। सच है, भक्तवत्सल भगवान्को अपने भक्तके लिये सब प्रकारकी व्यवस्था करनी पड़ती है। जलारामजी उस दिनसे और भी उत्साहके साथ साध-सेवा करने लगे।

‘जलाराम किसका नाम है?’ आगन्तुक एक साधुने दूकानदारोंसे प्रश्न किया।

‘बगलकी ही दूकान जलारामकी है।’ उसी द्वेषी बनियेने उत्तर दिया।

साधु जलारामकी दूकानपर आये। भक्तजीने उन्हें देखते ही नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और पूछा—‘क्या आज्ञा है, महाराज!’

भक्तराज! वस्त्रके बिना दुःख पा रहा हूँ। एक टुकड़ा वस्त्र साफ़ीके लिये दे दें। साधने कहा।

जलारामजीने प्रसन्न होकर खादीके थानमेंसे पाँच हाथका एक टुकड़ा फाड़कर दे दिया। साधु बाबा प्रसन्न होकर बाजारमें 'भक्त और भगवान्की जय' बोलते हुए चले गये।

आइये, भगवान्से प्रार्थना करें कि ऐसे संत-महात्मा जगत्के कल्याणके लिये सदा इस पवित्र भारत-भूमिपर अवतरित होते रहें ।

(श्रीआनन्दकुमार शूक्ला, वरिष्ठ शोध अध्येता)

मध्यकालमें कृष्णभक्तिके प्रचार-प्रसारमें वल्लभ-सम्प्रदाय और उसके अष्टछाप कवियोंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वल्लभसम्प्रदायके प्रधान आचार्य और संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने सन् १५१९ ई० के लगभग अपने मतका प्रधान केन्द्र श्रीनाथजीके मन्दिरको बनाया। यह मन्दिर उनके ही एक शिष्य पूरनमल खत्रीद्वारा उसी वर्ष बनवाया गया था। वल्लभाचार्य मूलतः दक्षिणसे थे और राजा कृष्णदेव रायके दरबारमें शास्त्रार्थद्वारा विभिन्न विद्वानोंको पराजितकर 'महाप्रभु'की पदवीसे विभूषित थे (१५६५ वि०)। दर्शनके क्षेत्रमें उनका मत शुद्धाद्वैतवादके नामसे प्रचलित हुआ। उनका जन्म संवत् १५३५ विक्रमी, वैशाख कृष्ण एकादशीको रायपुरके निकट चम्पारण्यमें विष्णुस्वामी मतावलम्बी भक्त श्रीलक्ष्मण भट्टके यहाँ हुआ। इनकी माँका नाम 'इलम्मागारु' था। कहते हैं कि अल्प अवस्थामें ही ये देशाटनको निकल पड़े और रामानुजाचार्यके समान भारतके बहुतसे भागोंमें पर्यटन और शास्त्रार्थद्वारा अपने मतका प्रचार किया। देशाटनसे पूर्व ही इनका विवाह श्रीदेवभट्टजीकी कन्या महालक्ष्मीसे हुआ। महालक्ष्मीसे इन्हें दो पुत्र हुए—गोपीनाथ और विट्ठलनाथ।

शुद्धाद्वैतवाद

शुद्धाद्वैत=शुद्ध+अद्वैत। श्रीवल्लभाचार्यजीके अनुसार कार्य-कारणरूप जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्म अपनी इच्छासे ही जगत् रूप बना है। जगत् न मायिक है और न भगवान्से भिन्न। यह ब्रह्मका अविकृत परिणाम है। उनके अनुसार जिस प्रकार बूँद और समुद्रमें तात्त्विक दृष्टिसे कोई भेद नहीं है, परंतु बूँद अपने उद्भव और विकासके लिए समुद्रपर निर्भर करती है। उसी प्रकार जीव भी ब्रह्मके अनुग्रहपर निर्भर है। इसी अनुग्रहको उन्होंने पुष्टिकी संज्ञा दी है। इसीलिये इनके सिद्धान्तको पुष्टिमार्ग भी कहा जाता है। भगवान् या ब्रह्मका अनुग्रह प्राप्त करनेका सिद्धान्त यद्यपि वल्लभाचार्यका नवीन सिद्धान्त नहीं है। इसके प्राचीन सत्र गीतामें भी मिलते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता १८।६२, ६६)

पुष्टिकी व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा—

पुष्टिः किं ?—पोषणम् ।

पोषणम् किं ?—तद् अनुग्रहः । भगवत्कृपा ।

‘पोषण’के भावको भक्तिके दो रूपोंद्वारा समझा जा सकता है—पहला साध्यरूप और दूसरा साधनरूप। साध्यरूपमें भक्त अपनेको ईश्वरकी कृपापर छोड़ देता है। जबकि साधनरूपकी भक्तिमें भक्तको ईश्वरतक पहुँचनेका प्रयत्न करना होता है। साध्यरूपकी भक्ति ही पुष्टिमार्गियोंमें स्वीकृत है। वल्लभाचार्यने जीवको ईश्वरतक पहुँचनेका अर्थात् सत्, चित् और आनन्दकी सम्मिलित अवस्थाके लिये तीन मार्गोंका उल्लेख किया है—

१. मर्यादामार्ग, २. प्रवाहमार्ग और ३. पुष्टि-मार्ग।

और इन तीनों मार्गोंमें पुष्टिमार्गको सर्वाधिक महत्त्व दिया, जो ईश्वरकृपा अर्थात् अनुकम्पापर निर्भर है—

‘पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैकसाध्यः, कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिः, अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।’

पुष्टिमार्गीय भक्ति कर्मकाण्डमुक्त; ईश्वरीय अनुकम्पायुक्त रागानुरागा प्रेमलक्षणा भक्ति है, जिसका पल्लवन वल्लभाचार्यके बाद अष्टछाप कवियोंने मिलकर किया। इन कवियोंने अपनी भक्ति एवं काव्यके माध्यमसे स्वयंको भगवत्कृपापर छोड़ उनकी अनुकम्पा या अनुग्रह प्राप्त करनेका ही प्रयत्न किया।

आचार्य वल्लभने श्रीकृष्णको ही परमपिता परमेश्वर माना। वे नित्य, स्वतन्त्र और सर्वज्ञ हैं। सर्वत्र व्याप्त तथा नाशरहित हैं। वे पारमार्थिक सगुण रूपमें लीलाएँ करते हैं। उनकी लीलाएँ अप्राकृत हैं; जो उन्हींके समान

सूरदासजीने अपने पदोंमें आसक्तिके ग्यारह रूपोंका वर्णन किया है, परंतु सख्य, वात्सल्य, कान्ता, तन्मया और विरहासक्तिके वर्णनोंमें मिठास ज्यादा है। नारदभक्तिसूत्रके अनुसार जीवकी प्रभुसे आसक्तिके ग्यारह रूप हैं—गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति और परमविरहासक्ति। और इसी परमविरहासक्तिसे भ्रमरगीतके सारे पद भरे हैं—

मधुबन तुम कत रहत हरे।

विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे॥

कृष्णकी बाल-लीलाओंके पदोंको देखकर नहीं लगता कि सूरदास जन्मान्ध थे। ब्रज और अवध प्रदेशमें प्रचलित लोककथाके अनुसार श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यके रूपको न देखनेकी इच्छासे ही उन्होंने अपनी आँखें स्वयं फोड़ ली थीं।

३. परमानन्ददास

इनका जन्म सं० १५५० वि०में कन्नौज (उत्तर प्रदेश)-के गरीब ब्राह्मण-परिवारमें हुआ। इन्होंने वल्लभाचार्यजीसे अरैल (प्रयाग)-में सं० १५७६ वि० में दीक्षा ली। ब्रह्मचर्यको आजीवन पालन करते हुए श्रीकृष्णके माधुर्यपक्ष और बाल-लीलाओंका गान किया। वल्लभाचार्यजी भी इनके पदोंके प्रशंसक थे। इनके कई ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें परमानन्दके पद, परमानन्दसागर महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी मृत्यु सं० १६४१ वि० में मानी जाती है। भाषाई-गठन और काव्यकलाकी दृष्टिसे सूरदास और नन्ददासके उपरान्त इन्हींका स्थान है। बालहठ सम्बन्धी इनका एक पद है—

तनक तनक की दोहनी दै-दै री मैया।

तात दुहन सिखवन कह्यो, मोहि धौरी गैया॥

हरि विषमासन बैठि के बेदु कर थन लीन्हों।

धार अटपटी देखि कै ब्रजपति हसि दीन्हों॥

गृह-गृह से आई जबै, देखन ब्रज-नारी।

सजाकत तन-मन हरि लियो, हसि धौरी बिहारी॥

द्विज बुलाइ दक्षिणा दई, मंगल जस गावै।

परमानन्द प्रभु लाडिलौ, सुख सिंधु बढ़ावै॥

४. कृष्णदास

इनका जन्म गुजरात राज्यके चिलोतरा ग्राममें हुआ था। सं० १५६६ वि०के लगभग मथुरामें वल्लभाचार्यजीने इन्हें दीक्षा दी। अपनी प्रशासनिक रुचिके कारण ही ये श्रीनाथजीके मन्दिरके अधिकारी पदपर विभूषित हुए थे। कहते हैं कि वल्लभाचार्यजीकी मृत्युके बाद उनके पौत्र पुरुषोत्तमको गद्दीपर बिठानेके लिये इन्होंने विट्ठलनाथजीसे विवाद भी कर लिया था। मन्दिरके वैभव और ऐश्वर्यकी वृद्धिमें इनका ही महत्त्वपूर्ण योगदान था। इनका गोलोकवास लगभग संवत् १६६५ वि० में हुआ। कहते हैं, अन्त समयमें उन्होंने यह पद गाया था—

मो मन गिरिधर-छबि पै अटक्यो।

ललित त्रिभंग चाल पै चलिकै, चिबुक चारु गढ़ि ठटक्यो॥

सजल स्याम घन बरन लीन है, फिरि चित अनत न भटक्यो।

कृष्णदास किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो॥

५. नन्ददास

नन्ददास प्रसिद्ध कवि तुलसीदासके चचेरे भाई थे। इनका जन्म सं० १५९०वि० में तथा मृत्यु सं० १६३९ वि०में हुई। तुलसीदास और नन्ददास दोनोंने प्रारम्भमें नृसिंह पण्डितसे शिक्षा ग्रहण की। पंडित नृसिंह रामोपासक थे अतः प्रारम्भमें इनकी रुचि रामभक्तिकी ओर थी। किंतु एक दिन द्वारिका जाते हुए मार्गमें इनकी मुलाकात विट्ठलनाथजीसे हुई और वहीं इन्होंने पुष्टिमार्गकी दीक्षा ली। इन्होंने कुल १५ ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम-बारहखड़ी, श्याम-सगाई, सुदामा-चरित्र, रुक्मिणी-मंगल, भँवरगीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी, दशमस्कन्धभाषा, गोवर्धनलीला, पदावली प्रमुख हैं। इन्होंने अपने शुद्धाद्वैत-सम्बन्धी विचारोंको अनेकार्थमंजरीमें संकलित किया है। किंतु लौकिक-पारलौकिक प्रेम एवं भाषा-सौष्ठवकी दृष्टिसे इनकी प्रौढ कृति रासपंचाध्यायी

जसोदा! कहा कहाँ हैं बात!
तुम्हरे सुतके करतब मो पै कहत कहे नहिं जात॥
भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन-दधि खात।
जौ बरजौं तौ आँखि दिखावै, रंचहु नाहिं सकात॥
और अटपटी कहाँ लौं बरनौं, छुवत पानि सों गात।
दास चतुर्भज गिरिधर-गुन हौं कहति-कहति सकचात॥

सबसे अपवित्र है क्रोध

चाण्डाल बोला—‘सबसे अपवित्र महाचाण्डाल तो क्रोध है और उसने आपमें प्रवेश करके मुझे छू दिया है। मुझे पवित्र होना है उसके स्पर्शसे।’ संन्यासीजीने लज्जासे सिर नीचा कर लिया।

कहानी—

गौ—लोकमाता

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

गावो लोकस्य मातरः

सृष्टिके इतिहासमें सजीव संसारपर एक साथ इतने संकट कदाचित् ही आये हों। लगता था प्राणिसृष्टि सर्वथा लुप्त हो जायगी। संकट सदा धर्मकी उपेक्षासे आते हैं। किंतु ऐसा संकट जबकि मनु प्रजापति एवं जिनपर प्रजाकी परम्परा बनाये रखनेका दायित्व है— सभी संत्रस्त हो उठे थे। महाशक्ति चामुण्डा संसारको चाट लेनेपर तुल गयी थीं।

क्या हुआ कि मनुष्य धर्मपराङ्मुख हो गया था। कलियुगमें मनुकी संतान प्रायः इन्द्रियलोलुप हो जाती है। तामस मन्वन्तरके इस पंचदश कलियुगमें वह कुछ अधिक उच्छृंखल, अपने स्थूल ज्ञानपर अधिक आश्रित, अधिक गर्वोद्धत हो गयी। उसने प्रकृतिके कुछ रहस्य क्या जान लिये, समझ लिया कि वही सृष्टिका कर्ता-धर्ता है। उसने रोगोंको पराजित किया, एक सीमातक शरीरको अमर कर लिया, कुछ नवीन प्राणी बना लिये और सौरमण्डलके दो-तीन ग्रहोंमें उसके उपनिवेश बन गये। ईश्वर, धर्मको उसने धता बता दिया। सदाचार उसके शब्दकोषमें दुर्बलताका पर्यायवाची बन गया और इस प्रमादमें उसका औद्धत्य बढ़ता गया और लो, अब महाविद्या चामुण्डा उद्दाम नृत्य करने लगी है। क्षुद्र मानव—मानवका क्षुद्र विज्ञान क्या अब चामुण्डाके चरणोंकी गति अवरुद्ध कर लेगा ?

मानवकी चर्चा व्यर्थ है। प्रजापति पथ नहीं पा रहे हैं। स्वयं सृष्टिकर्ता संत्रस्त हैं। यह शिव-वक्षविहारिणी किसीकी स्तुति नहीं सुनती। कोई मर्यादा नहीं मानती। यह सहज प्रचण्डा और इसका खप्पर क्या कभी भरा है कि आज भर जायगा।

शाश्वत सरिताओंकी धाराएँ शुष्क-प्राय हैं। पृथ्वी अनुदिन प्राणि-शून्य होती जा रही है और बढ़ता जा रहा है मरुस्थल। तृण, गुल्म, तरुओंसे रहित धरित्री कंकाल दीखने लगी है। यह अवर्षण है ? ऐसा भी अवर्षण होता है, जिसका आदि-अन्त ही न जान पड़े ?

मानवके प्रयत्न—मानवके अहंकारका मेरुदण्ड उसका

विज्ञान आज भग्नपृष्ठ, असहाय पड़ा है। वैज्ञानिकोंके यन्त्र कुछ नहीं बतलाते कि क्या हो रहा है। वायुमण्डलमें वाष्प बने तो वे वर्षा करा लें; किंतु यहाँ तो समुद्रका स्तर तीव्रतासे गिरता जा रहा है, सागर सूखते जा रहे हैं और वायुमें वाष्पका पता नहीं है।

पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्ति घट गयी है। चुम्बकीय गुठली (नाभिक) किसी कारण क्षीण हो गयी है। वैज्ञानिकोंने अपने ढंगसे विवेचन किया—‘वायुहीन-जलहीन ग्रहोंकी स्थिति पृथ्वी प्राप्त करने जा रही है। इस प्रलयसे बचनेका कोई मार्ग नहीं है।’

विज्ञानने अपने सब हथियार डाल दिये। हथियार उसे डालने ही थे। कोई एक विपत्ति थी उसके सम्मुख! अचानक भूकम्प और ज्वालामुखी फटने प्रारम्भ हो गये थे। भूमण्डलकी लगभग सभी मुख्य वेधशालाएँ, यन्त्रागार, अनुसन्धान-केन्द्र उसके पेटमें चले गये। मनुष्यने जहाँ अपने यन्त्र एकत्र करनेका प्रयत्न किया, धराके गर्भसे वहीं ज्वालामुखी फट पड़ा। मानवके प्रयत्न ध्वस्त करनेपर प्रकृति उतर आयी थी।

अमरत्व, रोगजय, नवीन प्राणि-सर्जनका अहंकार किसी काम नहीं आया। पता नहीं कहाँसे नवीन-नवीन रोगाणुओंकी सेना उतरने लगी। तीव्र संक्रामक रोगाणु और वे भयंकरतम विष भी पचा लेते थे। जनपदोंको उन्होंने ऐसे समेटना प्रारम्भ किया जैसे कृषक नहीं, कृषि काटनेवाली मशीन खेतोंको समेटती है।

आस्थाहीन, आचारहीन, धर्महीन मानव—अपंग विज्ञानको लेकर असहाय अब क्या करे? वह तो मृत्युकी अवश प्रतीक्षा करने लगा था।

\times
 \times
 \times

सृष्टिकी एक मर्यादा है। हम उसे जानें न जानें, मानें न मानें, उलूक-समुदायके जानने-माननेका प्रभाव दिवसकी सत्तापर पड़ा नहीं करता। सृष्टिकी संचालक, नियामक, संरक्षक कुछ शक्तियाँ हैं। कलापग्रामके

कल्पान्त तापस, मनु, प्रजापति, पितृगण एवं देवता। अकाल-प्रलय हो जाय तो उनकी सत्ता बनी रहेगी? उनका दायित्वके प्रति प्रमाद वह क्षमा कर देगा, जो सबका परम नियन्ता है?

कल्पान्त तापस, मनु, प्रजापति, पितृगण एवं देवता। अकाल-प्रलय हो जाय तो उनकी सत्ता बनी रहेगी? उनका दायित्वके प्रति प्रमाद वह क्षमा कर देगा, जो सबका परम नियन्ता है?

प्रजापति, पितृगण, देवता क्या करें? चामुण्डाके सम्मुख उनका वश कहाँ चलता है। मनु और जन, तप, महर्लोकोंके तापस, ऋषि, मुनि उतर आये धरापर। उनके लोक कर्मलोक नहीं हैं। अपने लोकोंमें वे कुछ करते—कोई परिणाम नहीं था। कलापग्रामके कल्पान्तजीवियोंको उन्होंने प्रत्यक्ष सहयोग दिया।

यज्ञ—लेकिन यज्ञसे तुष्ट होकर देवेन्द्र वर्षा तो तब करें, जब उन्हें ऐसा करने दिया जाय। यज्ञ होते हैं—सविधि, सम्यक् पूर्ण यज्ञ हिमगिरिकी अधित्यकामें वे विशुद्धसत्त्व ऋषि करते हैं। मेघमाला उठती है और फुहारें छूटती हैं—श्रुतिकी मर्यादाके रक्षामात्रके लिये फुहारेंमात्र। चामुण्डाकी हुंकारके सम्मुख सांवर्तक मेघ ही नहीं ठहर पाते तो सामान्य कादम्बिनी कैसे ठहरेगी?

‘हम अवश हैं!’ इन्द्र साक्षात् प्रकट हुए ऋषियोंके सम्मुख। वे जानते हैं कि इन तापसोंका अनुष्ठान अमोघ रखनेका दायित्व उनपर है और इनका कोप—दीनवदन देवेन्द्रने अपनी असमर्थता प्रकट की। कोई ऋषि अवशपर क्रोध करके शाप कैसे दे सकता था?

‘महाविद्या महाशक्ति चामुण्डाके रोषका उपशम?’

‘वह उपशान्त होनेको प्रस्तुत नहीं है।’

‘उसे शान्त तो होना चाहिये।’

‘उसे किसीका शाप स्पर्श नहीं करता।’

ऋषि—मुनियों एवं तापसोंकी सम्पूर्ण मण्डली कोई मार्ग नहीं पा रही थी और उनमें प्रत्येकको ज्ञात है कि जब प्राणीको कोई पथ प्राप्त न हो, उसे क्या करना चाहिये। उनके नेत्र बन्द हुए और परमप्रभुको उन्होंने साथ ही पुकारा—शब्दोंमें नहीं, अन्तरकी वाणीमें, जिसे वह अन्तरका वासी ठीक समझता है।

‘हम लोकमाताका आवाहन करेंगे!’ कोई उस अनन्त करुणार्णवको पुकारे और पथ न पाये? पथ प्राप्त हो गया था। एक साथ ऋषियोंके स्वरमें सुरभी—स्तवन

नगाधिराजके शिखरोंमें गूँजने लगा। स्तवनके स्वर उच्च होते गये और उनमें भाव-विह्वलता आयी। सहज शुद्ध अन्तःकरण ऋषियोंके कण्ठसे गूँजती वह परा वाणी, गगन परिपूत हो गया उस नादसे।

शत-शत चन्द्रज्योत्स्ना—विनिन्दक ज्योति—ऋषियोंके नेत्र एक बार ऊपर उठे और एक साथ उन्होंने भूमिपर मस्तक धर दिये।

‘हुं’ एक गम्भीर ध्वनि गूँजी। अनन्त वात्सल्य, अपार कारुण्य, अतुलनीय आशीर्वाद—धारा; जैसे धरित्रीको धो गयी। उन करुणावरुणालयाको स्तुतिकी अपेक्षा कहाँ और आशीर्वाद तो उनकी सहज हुंकृति है।

× × ×

‘चामुण्डे!’ इस प्रकार कोई उन महाशक्तिको पुकारेगा, सुर भी इसकी कल्पना नहीं कर सकते; किंतु सहज झिड़कीसे भरा था वह स्वर—‘बहुत हो गया! शान्त हो अब।’

‘तू जा! चामुण्डा गो-बलि नहीं लेती।’ अट्टहास करती वह कराली क्रोधसे चिल्लायी।—‘मेरे खप्परका व्याघात मत बन!’

‘मेरी संतानोंको अभय दे!’ गम्भीर बना रहा स्वर—‘तू लोकमाता है। शान्त हो जा।’

‘नहीं!’ ब्रह्माण्ड फट जाय ऐसा गर्जन।

‘नहीं!’ कामधेनुके कर्ण खड़े हुए। नेत्रोंमें अरुणिमा आयी। सिर झुका लिया उन्होंने और हुंकार किया। वह हुंकृति—उन नथुनोंसे महाज्वाला लपकी और भागी चामुण्डा। उसके कपालकी महाग्नि पीली पड़ चुकी थी।

जो निखिल ब्रह्माण्डमयी हैं, उनको दौड़नेकी अपेक्षा कहाँ थी। दौड़ रही थी चामुण्डा—बिखरे केश, अस्त-व्यस्त चामुण्डा भाग रही थी। उसका खड्ग, उसका कर-कपाल, सब मलिन-कान्ति और वह महाप्रलयकी अधिदेवी, त्रिलोकीको आर्त करनेवाली स्वयं आर्त भाग रही थी। उसे भागनेको भी स्थान नहीं मिल रहा था।

स्रष्टाकी उपेक्षा कर चुकी वह और वे लोकपितामह चाहें तो भी उसकी सहायता नहीं कर सकते, यह

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

चामुण्डा जानती है, किंतु यह आज क्या हो रहा है? उसे आज कैलासमें भी क्या प्रवेश नहीं प्राप्त होगा? इतना उग्र, इतना प्रचण्ड तो उसने भगवान् शिवके वृषभको कभी नहीं देखा। यह नित्य शान्त धर्म, किंतु आज तो वह हुंकारमें ज्वालमाला उगल रहा है। आघातोद्यत वृषभ—चामुण्डा आज उसके लिये अपरिचिता हो गयी है और वृषभका प्रतिकार करनेमें भी अपनेको समर्थ नहीं पाती।

‘देवर्षि!’ अचानक नारदजी दीख गये तो प्राणोंको आश्वासन प्राप्त हुआ।

‘देवि! उन वात्सल्यमयीमें रोष कभी आता नहीं। माता कभी रुष्ट नहीं होती।’ देवर्षिने कहा—‘सर्वेश्वरेश्वर मयूरमुकुटी जिनकी पद-वन्दना करते हैं, उन गोलोक-महेश्वरीका प्रतिकार कहीं नहीं है।’

‘मातः!’ चामुण्डाको मार्ग मिल गया और लोकमाताको पुकारने कहीं जानेकी आवश्यकता तो नहीं होती।

‘चामुण्डे!’ स्वरमें अपार वात्सल्य गूँजा—‘प्रलयके अतिरिक्त तू उद्धत नहीं बनेगी। आवश्यक होनेपर भी तेरा आघात सीमित एवं मर्यादित रहेगा।’

‘आपके आदेशकी मर्यादा मानेगी आपकी यह

अशुभ पुत्री!’ चामुण्डाने स्वीकार किया—‘सकारण क्रोध भी चामुण्डाका शान्त हो जायगा यदि आपकी कोई संतान—कोई गौका आश्रय ले लेगा। गो-पूजा से चामुण्डा दूर रहेगी।’

धराके उपद्रव सहसा शान्त हो गये। पृथ्वी शस्यश्यामला हो गयी। वैज्ञानिकोंने कहा—‘पृथ्वीकी गुठली (नाभिक) स्वतः आकर्षण शक्ति-सम्पन्न हो गयी है।’

काश, मानवमें सद्बुद्धि आती ! वह गो-सेवा सीख लेता ! उधर कैलासमें प्रश्न करनेपर भगवान् शशांकशेखर देवी उमासे कह रहे थे—‘देवि ! तुम महाविद्यारूपमें दशधा हो । लोकमाता हो ; किंतु तुम जानती ही हो कि सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी आह्लादिनी शक्तिका ही अंश तुममें है । गोलोकेश्वरी कामधेनु ही सच्चे अर्थमें लोकमाता हैं । वे उन परम पुरुषकी मूर्त संगिनी शक्ति हैं । यह निखिल लोक—समस्त लोकोंमें जो स्थूल-सूक्ष्म अभिव्यक्ति है, सब उन कामधेनुकी ही संकल्पाभिव्यक्ति है । वे किसीको भी अपनेमें लय कर लेनेमें सहज समर्थ हैं । उनकी—उनकी मूर्तिभूता गौओंकी सेवा ही लोकालयमें श्रेयस्करि है ।’

प्रेरक-प्रसंग—

ऋण लेकर भूलना नहीं चाहिये

नेपोलियन बोनापार्ट बचपनमें बहुत निर्धन थे; किंतु अपने साहस और उद्योगसे वे फ्रांसके सम्राट् हुए। सम्राट् होनेके पश्चात् वे एक दिन घूमते हुए उस ओर पहुँचे, जहाँ बचपनमें उन्होंने शिक्षा पायी थी। सहसा उन्हें कुछ स्मरण आया और अकेले ही एक छोटे घरके आगे वे जा खड़े हुए। उस घरकी एक बुढ़ियाको उन्होंने बुलाकर कहा—‘बूढ़ी माँ! बहुत पहले इस स्कूलमें एक बोनापार्ट नामका लड़का पढ़ता था, तुम्हें उसका कुछ स्मरण है?’

बुढ़िया बोली—‘हाँ, हाँ, मुझे स्मरण है। बड़ा अच्छा लड़का था वह।’

नेपोलियन—‘वह तुमसे फल, मेवा, रोटी आदि खाने-पीनेकी चीजें लिया करता था। उसने तुम्हारा सब दाम दे दिया या कुछ उधार उसपर रह गया?’

बुढ़िया—‘वह उधार रखनेवाला लड़का नहीं था। वह तो अपने साथियोंमें किसीके पास पैसा न हो तो अपने पाससे उनके पैसे भी चका देता था।’

नेपोलियन—‘तुम बहुत बूढ़ी हो गयी हो, इससे सब बातें तुम्हें स्मरण नहीं। अपने पैसे देकर तुम भूल जाओ, यह तो ठीक है; किंतु ऋण लेकर भूलना तो ठीक नहीं। उस लड़केपर तुम्हारे कुछ पैसे अभीतक उधार हैं। वह आपका ऋण चुकाते आया है। यह शैली लो और बहुत दिनोंका अपना ऋण इसके ऋणसे चुका लो।’

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, शुद्ध ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ५।५२ बजेतक	मंगल	विशाखा दिनमें ३।२१ बजेतक	१ मई	वृश्चिकराशि दिनमें ९।३ बजेसे।
द्वितीया " ६।४३ बजेतक	बुध	अनुराधा सायं ४।५८ बजेतक	२ "	भद्रा रात्रिमें ७।२१ बजेसे, मूल सायं ४।५८ बजेसे।
तृतीया दिनमें ७।५८ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा रात्रिमें ७।२ बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें ७।५८ बजेतक, धनुराशि रात्रिमें ७।२ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।३० बजे।
चतुर्थी " ९।३९ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ९।२४ बजेतक	४ "	मूल रात्रिमें ९।२४ बजेतक।
पंचमी " ११।३५ बजेतक	शनि	पू०षा० ,, १२।० बजेतक	५ "	×
षष्ठी " १।३९ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, २।३७ बजेतक	६ "	भद्रा दिनमें १।३९ बजेसे रात्रिमें २।३९ बजेतक, मकरराशि प्रातः ६।३८ बजेसे।
सप्तमी " ३।४० बजेतक	सोम	श्रवण रात्रिशेष ५।६ बजेतक	७ "	×
अष्टमी सायं ५।२६ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा अहोरात्र	८ "	कुम्भराशि सायं ६।१२ बजेसे, पंचकारम्भ सायं ६।१२ बजे।
नवमी " ६।५३ बजेतक	बुध	धनिष्ठा दिनमें ७।१८ बजेतक	९ "	×
दशमी रात्रिमें ७।५२ बजेतक	गुरु	शतभिषा " ९।७ बजेतक	१० "	भद्रा प्रातः ७।२२ बजेसे रात्रिमें ७।५२ बजेतक।
एकादशी " ८।२३ बजेतक	शुक्र	पू०भा० " १०।२९ बजेतक	११ "	मीनराशि रात्रिशेष ४।४८ बजेसे, अचला एकादशीव्रत (सबका) कृत्तिकाका सूर्य रात्रिमें ९।१७ बजे।
द्वादशी " ८।२३ बजेतक	शनि	उ०भा० " ११।२१ बजेतक	१२ "	मूल दिनमें ११।२१ बजेसे।
त्रयोदशी " ७।५१ बजेतक	रवि	रेवती ,, ११।४१ बजेतक	१३ "	भद्रा रात्रि ७।५१ बजेसे, मेषराशि दिनमें ११।४१ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें ११।४१ बजे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी सायं ६।५० बजेतक	सोम	अश्विनी ,, ११।३५ बजेतक	१४ "	भद्रा दिनमें ७।२१ बजेतक, मूल दिनमें ११।३५ बजेतक।
अमावस्या प्रातः ५।२४ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ११।० बजेतक	१५ "	भैमावती अमावस्या, वटसावित्री व्रत, वृष-संक्रान्ति दिनमें ८।२५ बजे, ग्रीष्मऋतु प्रारम्भ, वृषराषि सायं ४।५७ बजेसे।

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, अधिक ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।३९ बजेतक	बुध	कृत्तिका दिनमें १०।७ बजेतक	१६ मई	×
द्वितीया " १।३५ बजेतक	गुरु	रोहिणी " ८।५३ बजेतक	१७ "	मिथुनराशि रात्रिमें ८।१० बजेसे।
तृतीया " ११।१९ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा " ७।२७ बजेतक	१८ "	भद्रा रात्रिमें १०।७ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी " ८।५४ बजेतक	शनि	आर्द्रा प्रातः ५।५१ बजेतक	१९ "	भद्रा दिनमें ८।५४ बजेतक, कर्कराशि रात्रिमें १०।३५ बजेसे।
पंचमी प्रातः ६।२६ बजेतक	रवि	पुष्य रात्रिमें २।३१ बजेतक	२० "	मूल रात्रिमें २।३१ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें १।३९ बजेतक	सोम	आश्लेषा " १२।५९ बजेतक	२१ "	भद्रा रात्रिमें १।३९ बजेसे, सिंहराशि रात्रिमें १२।५९ बजेसे, सायन मिथुनराशिका सूर्य दिनमें ११।२ बजे।
अष्टमी " ११।३० बजेतक	मंगल	मघा " ११।३५ बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें १२।३५ बजेतक, मूल रात्रिमें ११।३५ बजेतक।
नवमी " ९।३५ बजेतक	बुध	पू०फा० " १०।२९ बजेतक	२३ "	कन्याराशि रात्रिशेष ४।१७ बजेसे।
दशमी " ८।१ बजेतक	गुरु	उ०फा " ९।४३ बजेतक	२४ "	श्रीगंगादशहरा।
एकादशी सायं ६।५१ बजेतक	शुक्र	हस्त " ९।१७ बजेतक	२५ "	भद्रा दिनमें ७।२६ बजेसे सायं ६।५१ बजेतक, पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत (सबका), रोहिणीका सूर्य सायं ६।४१ बजे।
द्वादशी " ६।६ बजेतक	शनि	चित्रा " ९।२१ बजेतक	२६ "	तुलाराशि दिनमें ९।१९ बजेसे, शनिप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " ५।५० बजेतक	रवि	स्वाती " ९।५२ बजेतक	२७ "	×
चतुर्दशी " ६।५ बजेतक	सोम	विशाखा " १०।५६ बजेतक	२८ "	भद्रा सायं ६।५ बजेसे, वृश्चिकराशि सायं ४।४० बजेसे।
पूर्णिमा ६।५३ बजेतक	मंगल	अनुराधा " १२।२८ बजेतक	२९ "	भद्रा प्रातः ६।२९ बजेतक, पूर्णिमा, मूल रात्रिमें १२।२८ बजेसे।

कृपानुभूति

भगवान् रामकी प्रत्यक्ष कृपा

सत्य घटना आषाढ़ शुक्ल द्वितीया सन् २००८ ई० की है। पुरीकी ही भाँति भगवान् जगन्नाथ स्वामीकी रथयात्रा प्रतिवर्ष 'रीवा' में भी धूमधामसे निकाली जाती है। कहते हैं कि बांधवगढ़नरेश महाराज विश्वनाथसिंह जू देव जगन्नाथ पुरीसे ही भगवान् जगन्नाथके विग्रहोंको स्वयं लेकर आये थे और उन्हें चारों धामके मन्दिर लक्ष्मणबागमें स्थापित किया था। सुन्दर सुसज्जित काष्ठ रथका निर्माण महाराज रीवाने रथयात्राहेतु ही करवाया था। प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको लक्ष्मणबाग, किला तथा शहरके प्रधान मार्गोंसे रथयात्रा सोत्साह निकलती है और भगवान् अपने भक्तोंको दर्शन देते हुए एक रात्रि मार्तण्ड स्कूलमें विश्रामकर आषाढ़ शुक्ल तृतीयाको पुनः अपने मन्दिर लक्ष्मण बागमें विराजमान होते हैं। 'मानस भवन' का भवन बननेके बाद जिला प्रशासन एवं सामाजिक कार्यकर्ताओंके सुझावपर मार्तण्ड स्कूलके स्थानपर 'मानस भवन' में ही भगवान् जगन्नाथजीका विश्राम होने लगा, इससे लोगोंको दर्शनका लाभ सुगमतासे होने लगा; क्योंकि यह स्थान नगरके मध्यमें है।

सन् २००८ में मानस मण्डल रीवाकी पदाधिकारीके नाते भगवान्की अगवानी तथा विशेष पूजा-अर्चनाका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। दूसरे दिन भव्य भण्डारेका आयोजन रखा गया। जिसकी तैयारी एक दिन पूर्व ही होनी थी। अनाज, किराना, सब्जी, घी, मसालेका इन्तजाम हो गया। कढ़ी, चावल, सब्जी, पूड़ी तथा बूँदी बनवानेका निर्णय हुआ। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि भगवान्को 'मालपुआ' का भोग भी लगाया जाय। हलवाईसे पूछा तो उसने बताया कि मालपुआ बनानेमें साढ़े चार हजार रुपये अतिरिक्त खर्च होंगे। कोषाध्यक्षजीसे बात की तो उन्होंने कहा कि बूँदी बनवा रहे हैं, मालपुआमें खर्च अधिक होगा, अतः उसको स्थगित रहने दीजिये—मेरा मन दुखी हो गया। रात्रिके साढ़े दस बज चुके थे। रसोई और हलवाईका सभी प्रबन्धकर मैं अपने पतिदेवके साथ अपने निवासको लौटने ही वाली थी कि अचानक एक अनजान महाशय आये और पूछा—“कलके भण्डारेकी व्यवस्था हो गयी?” मैंने कहा—हाँ, हो गयी। वे बोले और ‘मालपुआ’—मैंने कहा—‘मेरी इच्छा तो बहुत थी कि मालपुआ बनाय

चाहिये, किंतु कोषाध्यक्षजीने कहा बजट नहीं है।' उन्होंने कहा—'भगवान् जगन्नाथजीको मालपुआका भोग तो लगना ही चाहिये। कितना खर्च होगा मालपुआ बननेमें?' मैंने कहा—साढ़े चार हजार रुपये लगेंगे, उन महाशयजीने तत्काल जेबसे साढ़े चार हजार रुपये निकाले और कहा—लीजिये, साढ़े चार हजार रुपये गिन लीजिये और प्रेमसे मालपुआ बनने दीजिये। ऐसा लगा, जैसे गिनी हुई रकम वे लेकर आये थे। मैं आश्चर्यमें पड़ गयी। भण्डारेके नामसे सौ रुपये देने में भी लोगोंको तकलीफ होती है, वहीं ये महाशय इतनी बड़ी रकम एकाएक कैसे दे रहे हैं? मैं सैंतालीस वर्षोंसे रीवामें विभिन्न महाविद्यालयोंमें अध्यापन कर चुकी हूँ, रीवाके सभी लोग मुझे जानते हैं तथा मैं भी प्रायः सभीको जानती हूँ किंतु इन महाशयको पहले कभी देखा भी नहीं था। इसलिए मैंने पूछा—भैया! आपको रीवामें मैंने पहले कभी नहीं देखा। आप कभी मानस भवनके किसी कार्यक्रममें भी नहीं दिखे। मैंने आपको पहचाना नहीं। उन्होंने कहा—मैं दशरथका बेटा हूँ, शहडोलसे आया हूँ और अब वापस जा रहा हूँ, ऐसा कहकर वे उदार महापुरुष तत्काल वहाँसे चले गये। मैं अवाक् भौचक्की होकर उनको देखती रही, बातें सुनती रही, दानकी रकम भी स्वीकार कर ली, किंतु कुछ समझ न सकी।

‘अतिसय प्रबल देव तव माया’—इसी मायाके चक्करमें भूल गयी कि दशरथके पुत्र वे रामजी ही तो थे, जो मेरी मालपुआ भोग लगानेकी प्रबल इच्छाको पूर्ण करने प्रगट हुए थे और चले गये, फिर कभी नहीं दिखे।

दूसरे दिन प्रेमसे मालपुआ बना, भगवान् जगन्नाथजीको भोग लगाया गया, सब भक्तोंने पाया। शाम चार बजे भगवान् जगन्नाथजी मानस भवनसे बिदा हो गये, तब मैंने दशरथके पुत्रके रूपमें आये हुए उन अनजान व्यक्तिका चिन्तन किया और घोर पश्चात्ताप करने लगी कि मैंने उन्हें पहचाना क्यों नहीं ? जी भरकर देखा भी नहीं। मुझ-जैसे तुच्छपर रामजीकी कैसी अहैतुकी कृपा हुई ? **‘अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना । ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥**

छाँड़ि भजहिं जे आना । ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अनूठी नैतिकता

आधुनिक भारतके निर्माताओंमेंसे एक डॉ० एम० विश्वेश्वरैयाकी गणना भारतके महान् इंजीनियरोंमें की जाती है। कृष्णराजसागर बाँध, हीराकुण्ड बाँध, भद्रावती स्टील वर्क्स, हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लि० बंगलौर उनके तकनीकी ज्ञानके चमत्कारके नमूने हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने हैदराबाद शहरको बाढ़मुक्त करनेकी योजना बनाकर उसे बाढ़की समस्यासे मुक्त कराया। मैसूर बैंक और मैसूर विश्वविद्यालयकी स्थापना भी उन्हींके अथक परिश्रमके परिणाम हैं। अपने एक सौ एक वर्षीय जीवनमें वे अन्ततक सक्रिय रहे। त्याग, परिश्रम, कर्तव्यनिष्ठा एवं देशप्रेमके वे मूर्तिमान् स्वरूप थे। वे चरित्र-पालन और ईमानदारीको मानवका सर्वोत्तम गुण बताया करते थे और स्वयं पग-पगपर नैतिकताके नियमोंका पालन करते थे।

वर्ष १९१६ की बात है, डॉ० विश्वेश्वरैया मैसूर राज्यके दीवान पदका दायित्व सँभाले हुए थे। एक बार उन्हें सूचना मिली कि उनके एक निकट-सम्बन्धी अचानक बीमार हो गये हैं। उन्हें बंगलौरके अस्पतालमें भर्ती कराया गया है।

समय निकालकर उन्होंने अस्पताल पहुँचकर उन्हें देखनेका निश्चय किया। वे मैसूरसे राज्यकी सरकारी कारसे बंगलौर नहीं गये। बस स्टैण्ड गये तथा बसमें सवार होकर बंगलौर जा पहुँचे। मैसूरके महाराजाको उनसे आवश्यक परामर्श लेना था। उन्होंने अपने सचिवको उन्हें बुलाने भेजा। उसने सरकारी कार वहीं खड़ी देखी। कार्यालयके अन्दर जानेपर पता चला कि वे व्यक्तिगत कार्यसे जानेके कारण सरकारी कार वहीं छोड़ गये हैं।

महाराजाको जब इस बातका पता चला तो वे उनकी इस नैतिकताकी पराकाष्ठाको देखकर चकित हो उठे।

वर्ष १९१८में डॉ० विश्वेश्वरैया ५८ वर्षकी आयुके हुए। उन्होंने महाराजासे कहा—‘मेरी आयु सेवानिवृत्तिकी

हो चुकी है। अब मेरी जगह किसी अन्य व्यक्तिको दीवानके पदपर नियुक्त कर दें।’ महाराज उन-जैसे कर्तव्यपरायण और अनुभवी व्यक्तिको दस वर्ष और दीवान बनाये रखना चाहते थे, परंतु विश्वेश्वरैया नयी पीढ़ीको देशका कर्णधार मानते थे और उसे आगे बढ़ने देना चाहते थे।

वे एक दिन कारसे महाराजाके महलमें पहुँचे। कार वहाँ खड़ी की। बन्द लिफाफेमें त्यागपत्र रखा और उसे महाराजके पास भिजवा दिया।

महाराजने जैसे ही त्यागपत्र देखा, हतप्रभ रह गये। मैसूर-जैसे राज्यका दीवान होना, आज किसी राज्यके मुख्यमन्त्री-जैसा है, परंतु अपनी नियमनिष्ठाके कारण सेवानिवृत्तिकी आयुपर उन्होंने स्वतः पद छोड़ दिया; यद्यपि वे बादमें भी देशकी सेवाके भावसे अपने कार्यमें जुड़े रहे, पर पदके प्रति लिप्सा नहीं रखी। आगे चलकर स्वाधीन भारतमें डॉ० विश्वेश्वरैयाको ‘भारत-रत्न’ की सर्वोच्च उपाधिसे अलंकृत किया गया।—शिवकुमार गोयल

(२)

निःस्वार्थ परोपकार

बात १५ मई २००७ ई० की है, हम दोनों पति-पत्नी स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें श्रीरामसुखदासजीका प्रवचन सुननेहेतु गये थे। वहाँ गीता भवन नं० ३ में जानेके लिये हमें गंगा पार करना था। इस हेतु नावमें बैठनेके लिये टिकट लेकर सीढ़ियोंसे होकर जाना था। वृद्धावस्था एवं शारीरिक रूपसे कमजोर होनेके कारण १०-१५ सीढ़ी पार करते ही मेरी पत्नी फिसलकर गिर गयी। गिरनेसे उसके घुटनेमें चोट लग गयी, जिससे खून बहने लग गया। मैं आगे-आगे चल रहा था, उसके गिरते ही मैं रुका और पीछे मुड़कर देखा तो खून काफी निकल रहा था। यह देखकर मैं घबरा-सा गया। मैं कुछ सोचता, उससे पहले ही पीछेसे दो महिलाएँ आ रही थीं, उनमेंसे एकने हाथसे खूनको रोका और तुरंत अपनी नयी साड़ीका पल्लू फाड़कर डिटॉल लगाकर पट्टी बाँध दी।

मैं तो घबरा गया था, पर उन औरतोंने हाथ

इस घटनाका तिलकके मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्हें उस दिन स्वावलम्बी बननेकी प्रेरणा और एक उत्तम मौन सीख मिली। मन-ही-मन उनका मस्तक दादाभाई नौरोजीके चरणोंमें नत हो गया।—शिवचरणसिंह चौहान

(५)

सच्चे विश्वासका प्रभाव

गाँवके बाहर एक छोटी-सी किरानेकी दूकान थी। दूकानदारका स्वभाव इतना अच्छा था कि गाँवके सभी लोग उसकी दूकानसे माल खरीदना चाहते थे। दूकानदार प्रभुभक्त था। रात्रिमें चौकमें बैठकर वह सुमधुर कण्ठसे भजन गाता था। गाँवके लोग वहाँ आकर भजन सुनते थे तथा स्वयं भी प्रेमसे गाते थे।

जैसा लोगोंका विश्वास व्यापारीके ऊपर था, वैसा ही दृढ़ विश्वास व्यापारीका भी लोगोंके ऊपर था। दोपहरको भोजन करनेके लिये अपने घर जानेके समय वह दूकानदार दूकानपर बैठे हुए किसी भी व्यक्तिको अपनी दूकान सौंपकर भोजन करने चला जाता था। यह उसका नित्यका क्रम बन गया था। एक दिन दोपहरके समय उसकी दूकानपर एक प्रसिद्ध डाकू आया और वहीं बैठ गया। कोई भी उसे पहचानता नहीं था कि वह डाकू है। भोजनका समय होते ही दूकानदारने उस डाकूको अपनी दूकान सौंप दी और स्वयं घर चला गया। उसके जानेके बाद वह डाकू दूकानपर बैठ गया और दूकानका लेन-देनका काम करने लगा।

उस समय डाकूकी टोलीका एक आदमी कुछ खरीद करनेके लिये आया और दूकानपर अपने साथीको ही बैठा हुआ देखकर उसने कहा—‘दोस्त! बहुत अच्छा मौका मिला है, आज दोपहरके समयमें हाथ मारनेमें कोई मुश्किल नहीं। एक ही बारमें बेड़ा पार हो जायगा।’

‘तुम जल्दीसे चले जाओ यहाँसे!’—दूकानपर बैठे हुए डाकूने लाल आँखें करके कहा। ‘ऐसा विश्वासघात करनेसे तो हमारा सर्वनाश हो जायगा। यदि इस समय दूकानके प्रति तुम कुटूँष्टि डालोगे तो तुम्हारी खैर नहीं।’ अपने साथीसे इस प्रकारका उत्तर पाकर वह व्यक्ति चुप हो गया और अपनी आवश्यकताकी वस्तु खरीदकर चुपचाप लौट गया। थोड़ी देरमें भोजन करके दूकानदार लौट आया। दूकान सँभाले हुए डाकूने खड़े होकर कहा—‘महाशय! सँभालिये अपनी यह दूकान और गिन लीजिये पैसे; कोई हेर-फेर तो नहीं हुआ?’ ‘अरे

भाई’—दूकानदार बोला। ‘इस प्रकार क्यों बोलते हैं आप? मैं तो आपपर पूरा विश्वास करके ही दूकान सौंपकर गया था, फिर देखने-सुननेकी बात ही कहाँ है।’

दूकानदारके मुखसे ऐसे आत्मीयताभरे शब्द सुनकर डाकूका हृदय भर आया। उसने झुककर दूकानदारके चरणस्पर्श किये और अपना परिचय दिया। इतना ही नहीं, उसने प्रतिज्ञा की कि ‘अब भविष्यमें कभी चोरी या डकैती नहीं करूँगा।’

एक अत्यन्त सामान्य व्यक्तिके ऊपर विश्वास करके उसके जीवनमें परिवर्तन लानेवाले दूकानदारका नाम था—‘संत तुकाराम!’ ‘सुविचार’—उपेन्द्र पंचाल

(६)

अपने घुटने कभी न बदलिये

[घरेलू उपचार]

५० वर्षके बाद धीरे-धीरे शरीरके जोड़ोंमेंसे लुब्रीकेन्ट्स एवं कैल्सियम बनना कम हो जाता है, जिससे जोड़ोंका दर्द, गैप, कैल्सियमकी कमी आदि तकलीफें सामने आती हैं, जिसके चलते आधुनिक चिकित्सक आपको ज्वाइन्ट-रिप्लेसमेन्ट करवानेकी सलाह देते हैं।

किंतु क्या आपको पता है जो चीज कुदरतने हमें जिस रूपमें दी है उसे आधुनिक विज्ञान या कोई भी साइंस नहीं बना सकता है। ज्वाइन्ट-रिप्लेसमेन्टसे बचनेका एक अद्भुत उपाय यहाँ दिया जा रहा है—

घुटनों एवं ज्वाइन्ट्सके दर्दका उपाय

बबूल (देशी) नामके वृक्षको आपने जरूर देखा होगा, बबूलके वृक्षमें बीजसहित फली आती है, उसको तोड़कर लेकर आयें और उसे सुखाकर पाउडर बना लें। सुबह १ चम्मचकी मात्रामें गुनगुने पानीसे (भोजनके पश्चात्) केवल २-३ महीनेतक सेवन करनेसे आपके घुटनेका दर्द बिलकुल ठीक हो जायगा और आपको घुटने बदलनेकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

—डॉ० पवनकुमार [सम्पर्क : ०७८३८०३७०३०]

[प्रेषक—सत्यनारायण सामरिया]

मनन करने योग्य

परोपकार महान् धर्म

जगज्जननी जानकीका हरण करनेके लिये दुरात्मा रावणने मारीचको माया-मृग बननेके लिये बाध्य किया। मायासे स्वर्ण-मृग बने मारीचका आखेट करने धनुष लेकर श्रीराम उसके पीछे गये। वह उन्हें दूर वनमें ले गया और अन्तमें जब उनके बाणसे मरा, तब मरते-मरते भी 'हाय लक्ष्मण!' पुकारकर उसने छल किया। उस आर्तस्वरको सुनकर श्रीजानकीजी व्याकुल हो गयीं। उनके आग्रहसे लक्ष्मणजीको अपने ज्येष्ठ भ्राताका पता लगाने वनमें जाना पड़ा। पंचवटीमें श्रीवैदेहीजी को अकेली देखकर रावण वहाँ आया और उसने बलपूर्वक उन जनककुमारीको रथमें बैठा लिया।

श्रीसीताजीको रथमें बैठाकर राक्षसराज रावण शीघ्रतासे भागा जा रहा था। श्रीमैथिली आर्त-क्रन्दन कर रही थीं। उनकी वह आर्त-क्रन्दन-ध्वनि पक्षिराज जटायुने भी सुनी। जटायु वृद्ध थे; उनको पता था कि रावण विश्वविजयी है, अत्यन्त क्रूर है और ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे अजेयप्राय है। जटायु समझते थे कि वे न रावणको मार सकते हैं न पराजित कर सकते हैं। श्रीजनकनन्दिनीको वे छुड़ा सकेंगे उस क्रूर राक्षससे, इसकी कोई आशा न उन्हें थी, और न हो सकती थी। उलटे रावणका विरोध करनेपर मृत्यु निश्चित थी। परंतु सफलता-विफलतामें चित्तको समान रखकर प्राणीको अपने कर्तव्यका दृढ़तासे पालन करना चाहिये। यही जटायुने किया। वे पूरे वेगसे रावणपर टूट पड़े। उसका रथ अपने आघातोंसे तोड़ डाला। अपने पंजों तथा चोंचकी मारसे रावणके शरीरको नोच डाला। पर अन्तमें रावणने तलवार निकालकर उनके पंख काट दिये।

जटायु भूमिपर गिर पड़े। रावण श्रीजानकीजीको लेकर आकाशमार्गसे चला गया।

जब मारीचको मारकर श्रीराम लौटे, लक्ष्मण उन्हें मार्गमें ही मिल गये। कुटियामें श्रीजानकीको न देखकर वे व्याकुल हो गये। नाना प्रकारका विलाप करते हुए वैदेहीको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भाई आगे बढ़े। मार्गमें उनकी

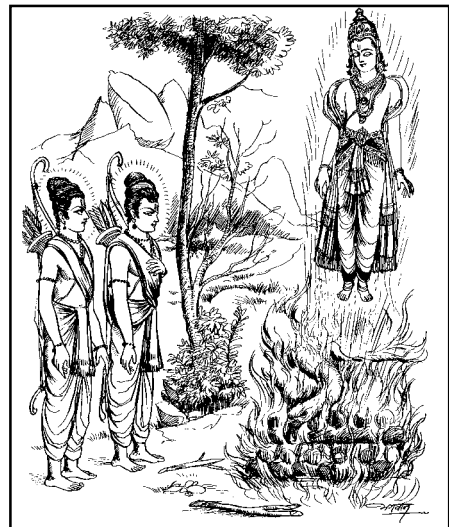
प्रतीक्षा करते जटायु अन्तिम स्थितिमें मृत्युके क्षण गिन रहे थे। मर्यादापुरुषोत्तमको उन्होंने विदेह-नन्दिनीका समाचार दिया। उस दिन श्रीराघवेन्द्रने नरनाट्य त्यागकर कहा—'तात! आप अपने शरीरको रखें! मैं आपको अभी स्वस्थ कर दूँगा।'

जटायु इसे कैसे स्वीकार कर लेते। श्रीराम सम्मुख खड़े हों, मृत्युके लिये ऐसा सौभाग्यशाली क्षण क्या बार-बार प्राप्त होता है? वे त्रिभुवनके स्वामी जटायुको गोदमें लेकर अपनी जटाओंसे उनके रक्तमें सने शरीरकी धूलि पोंछ रहे थे, उन्हें अपने अश्रुओंसे स्नान करा रहे थे। वे अनुभव कर रहे थे कि सर्वसमर्थ होनेपर भी वे जटायुको कुछ नहीं दे सकते। नेत्रोंमें अश्रु भरकर उन श्रीराघवेन्द्रने कहा—

तात कर्म निज तें गति पाई॥

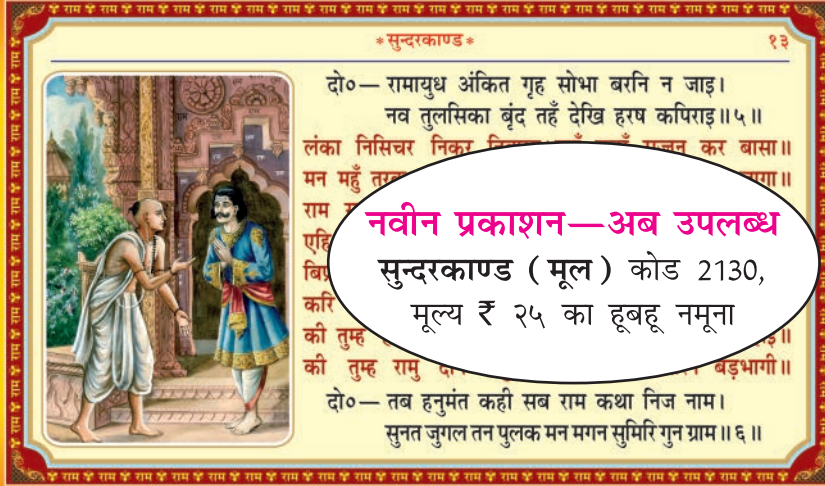
परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहूँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

'जटायु! तुमने तो अपने कर्मसे ही परमगति प्राप्त कर ली है। तुम पूर्णकाम हो गये हो, तुम्हें मैं क्या दे सकता हूँ।'



शरीर त्यागकर जटायु जब चतुर्भुज दिव्य भगवत्पार्षद देहसे वैकुण्ठ चले गये, तब श्रीरामने अपने हाथों उनके उस गीधदेहका बड़े सम्मानपूर्वक अग्नि-संस्कार किया।

नवीन प्रकाशन



नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

सुन्दरकाण्ड (मूल) कोड 2130,

मूल्य ₹ २५ का हूबहू नमूना

गीताप्रेस वेब www.gitapress.org पर मुफ्त उपलब्ध पुस्तकें

अन्य पुस्तकें भी शीघ्र उपलब्ध कराने का प्रयास है

कोड	पुस्तक-नाम	कोड	पुस्तक-नाम	कोड	पुस्तक-नाम
	अंग्रेजी				कन्नड़
1528	Śrī Hanumānacālīsā [With Hindi Text and English Translation]	1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता	738	हनुमत्-स्तोत्रावली
0455	THE BHAGAVADGĪTĀ [With Sanskrit Text and English Translation]	1283	सत्संगकी मार्मिक बातें	736	नित्यस्तुति एवं आदित्यहृदयस्तोत्रम्
1318	Śrī Rāmācaritamānasa [With Hindi Text and English Translation]		गुजराती	842	श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्
2001	Vidura Nīti	948	सुन्दरकाण्ड (मूल) मोटा टाइप	721	भक्त बालक
	हिन्दी	1198	हनुमानचालीसा (लघु आकार)	836	नल-दमयन्ती
6	गीता-साधक-संजीवनी	1941	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्र (नामावलीसहित)		तमिल
118	श्रीदुर्गासप्तशती (सटीक)	1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	1788	श्रीमुरुगन् तुदिमालै
225	गजेन्द्रमोक्ष	931	उद्धार कैसे हो ?	1789	तिरुप्पावै विलवकम्
226	श्रीविष्णुसहस्रनाम (मूल)		मराठी	792	आवश्यक चेतावनी
229	श्रीनारायणकवच	855	श्रीहरिपाठ (मूल)	1912	व्रत-कल्पत्रयम्
231	श्रीरामरक्षास्तोत्र	859	ज्ञानेश्वरी (मूल) मञ्जला		मलयालम
563	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्र	1640	सार्थ मनाचे श्लोक	1916	श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक)
1349	सुन्दरकाण्ड (सटीक) मोटा टाइप	1779	सत्कर्माची गोड फले		ओड़िआ
1919	सुन्दरकाण्ड (मूल) विशिष्ट संस्करण	1815	घराघरातील संस्कार कथा	856	श्रीहनुमानचालीसा
18	श्रीमद्भगवद्गीता—सटीक		तेलुगु	1750	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत-एकादश स्कन्ध
1922	गोरक्षा एवं गोसंवर्धन	973	शिवस्तोत्रावली	1251	भवरोगकी रामबाण दवा
1938	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	1806	श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावली	1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय
311	परलोक और पुनर्जन्म (एवं वैराग्य)	1502	श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा		असमिया
366	मानव-धर्म	1026	पंचसूक्तमुलु-रुद्रमु	1564	महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव
632	सब जग ईश्वररूप है	759	शरणागति एवं मुकुन्दमाला	703	गीता पढ़नेसे लाभ
1748	सन्तानगोपालस्तोत्र	1759	वासुदेवःसर्वम्		पंजाबी
302	ध्यान और मानसिक पूजा	907	प्रेम-भक्तिका प्रकाश	1616	गृहस्थमें कैसे रहें ?
729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण	1029	भजन-संकीर्तनावली		नेपाली
			बँगला	2046	हनुमानचालीसा
		1881	हनुमानचालीसा (अर्थसहित)		उर्दू
		1659	श्रीश्रीकृष्णोर अष्टोत्तरशतनाम	1446	गीता केवल भाषा
		1797	स्तवमाला		
		1853	आमदेर लक्ष्य एवं कर्तव्य		



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

**सरल गीता (कोड 2099)-हिन्दी अनुवाद और (कोड 2128) अंग्रेजी अनुवाद
प्रत्येकका मूल्य ₹ ३५**

सरल गीता क्यों ?— हमारे समाजमें ऐसे

बहुत-से पाठक हैं जो संस्कृतका ज्ञान न होनेके कारण गीताजीके श्लोकोंका शुद्ध पाठ नहीं कर पाते हैं। हमारी भावना और प्रयास उन सभी महानुभावोंके लिये है जो गीता पढ़ना चाहते हैं। इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर भगवान्की अहैतुकी कृपासे यह 'सरल गीता' तैयार की गयी है।

गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंकी सुविधाके लिये प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। इससे श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी।

श्लोकका नमूना

आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

**नैव किञ्चित् करोमीति,
युक्तो मन्येत तत्त्व-वित्।**

पश्यज्-शृण्वन्-स्पृशज्-जिघ्रन्-

नश्नन्-गच्छन्-स्वपज्-श्वसन् ॥ ८ ॥

प्रलपन्-विसृजन्-गृह्णन्-नुमिषन्-निमिषन्-नपि।

इन्द्रिया-णीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥

तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ,

आवश्यक सूचना

1. पाठकोंसे निवेदन है कि पुस्तक अथवा कल्याण मँगवानेके लिये जो धनराशि आप बैंक अथवा पोस्ट ऑफिसके माध्यमसे भेजते हैं, उसकी सूचना ई-मेल अथवा पत्रके माध्यमसे **गीताप्रेस, गोरखपुरको पत्राचारके पूरे पते मोबाइल नम्बरके साथ अवश्य भेज दिया करें** क्योंकि बैंक तथा पोस्ट ऑफिससे पूरा पता नहीं मिल पाता है। पूर्ण पतेके अभावमें आप द्वारा भेजी गयी धनराशिका निस्तारण नहीं हो पाता है। अगर ६० दिनोंके अन्दर आपको कोई समुचित उत्तर न मिले तो दुबारा अवश्य सूचित करें। ऐसी पुरानी कुछ धनराशि पूरे पते व मोबाइल नम्बरके अभावमें हमारे यहाँ जमा हैं जिसका निस्तारण प्रमाण मिलनेपर कर दिया जा रहा है।

2. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन **09235400242/ 09235400244** उपलब्ध हैं। कृपया केवल इन्हीं नम्बरों पर ही प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9 बजेसे 12 बजेतक एवं 1.30 बजेसे 4.30 बजेतक सम्पर्क करें अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० **9648916010** पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

3. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये सन् २०१८ के लिये **वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ २५० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।**

4. कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)